अर्हंनमः

श्री सुखसागर ज्ञान बिन्दु—४७

महातपस्वी-चरित

लेखक

जैनाचार्य श्रीमज्जिनहरिसागर सूरीश्वरजी महाराज साहब



प्रकाशक

पारख इन्द्रचन्द्र जैन

मंत्री श्रीजिनहरिसागरसूरि जैन ज्ञान भण्डार

लोहावट [मारवाड़]

वीर सं० २४७५] सुख सं० ६३ [विक्रम सं० २००५

अमूल्य

—धन्यवाद—

श्री महातपस्वीजी महाराज की महामहिमशाली छत्रछाया में दिव्य साधु दीक्षा और प्रौढ शिक्षा पानेवाले पूज्येश्वर परमगुरु आचार्यदेव श्रीमज्जिनहरिसागर सूरीश्वरजी महाराज साहेब द्वारा आलेखित हुए इस महत्वपूर्ण महातपस्वीचरित्त के प्रकाशन में उन्हीं पूज्येश्वरों की पुनीत आज्ञानुयायिनी स्वर्गीया परम संयमशीला-साध्वी-श्रेष्ठा प्रवर्तिनीजी श्रीमती प्रतापश्रीजी महाराज के स्मरणार्थ उन्हीं की विदुषी शिष्या श्रीमती ऋद्धिश्रीजी चंद्रश्रीजी महाराज के सदुपदेश से द्रव्य देने वाले—बीकानेर निवासी श्रीयुत घेवरचन्दजी मरोठी श्रीयुत गोरधनचन्दजी इंद्रचन्दजी कोठारी श्रीयुत भीखनचन्दजी चच्छावत श्रीयुत पूनमचन्दजी भांडावत श्रीयुत धनराजजी वैद और श्रीयुत दीपचन्दजी गुलेछा— धन्यवाद के पात्र हैं।

निवेदक:

पारख इंद्रचन्द्र जैन

मंत्री—श्रीजिनहरिसागरसूरि ज्ञान भण्डार

जाटावास लोहावट (मारवाड)

महातपस्वी चरित के लेखक

जैनाचार्य पूज्येश्वर श्री श्री १००८ श्री

श्रीमज्जिनहरिसागर सूरीश्वरजी महाराज



जन्म सं० १६४६ मार्ग. शु. ७ रोहिणा (मारवाड़)

दीक्षा सं० १६५७ आषा. कृ. ५ फलोदी (मारवाड़)

आचार्य पद सं० १६६२ मार्गशीष शु. १४ अजीमगंज (बंगाल)

किञ्चिद्वक्तव्य



परम पिता परमात्मा के परम मंगलमय भावानुग्रह से महातपस्वी गुरुदेव श्री श्री १००८ श्रीमान् छगनसागरजी महाराज साहब की महान् जीवन-ज्योति पाठकों के कर कमलों में पुस्तकाकार रूप से उपस्थित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

स्वयं देखी हुई, वृद्धों से सुनी हुई महातपस्वीजी की जीवन घटनाओं की नोंध-पोथी से इस पुस्तक का संकलन हुआ है। महातपस्वीजी का गृहस्थ जीवन जहां फलोदी से बारसी और हैदराबाद दक्षिण तक पहूंचता है, तो साधु जीवन मारवाड—सोलख-थली-माटीपा-गोढवाड-गुजरात और काठियावाड तक पहूंचता हुआ यशःकाय रूप से दिग् दिगन्त में व्याप्त होता है।

इसमें किस्से कहानियों की मन घडंत बातें या कवि-की कोरी कल्पनाओं को कोई स्थान नहीं दिया गया है। संपूर्ण जीवन घटनाओं को अंकित कर देने का मिथ्या प्रयास भी इसमें नहीं किया गया है। स्थूल—अति स्थूल जीवन घटनाओं का ही संक्षेप में यहां आलेखन हुआ है।

इसमें पाठकों को गोलेछा गोत्र का संक्षिप्त इतिहास जैन सिद्धान्त—आत्मा और परमात्मा की व्यवस्था-सद्‌गुरु सत्संग के अपूर्वलाभ, आदर्श गृहस्थ के आचार-विचार,

आदर्श गृहिणी का वर्त्तन, भोग से त्याग की विशेषता, साधना से सिद्धियां, आत्मवाद-अहिंसावाद–कर्मवाद-स्याद्वाद–नयवाद–प्रमाणवाद, आस्तिक-नास्तिक की परिभाषा, आत्म शक्ति के अलौकिक चमत्कार, दया-दान की आवश्यकता, मूर्ति-पूजा में प्रभु-पूजा का आदर्श, साधु-साध्वी व्याख्यान की विशेषता, स्थान २ पर पढने व समझने को मिलेगा। साथ ही महातपस्वीजी की कई कृतियों में से जो दो कृतियां श्री सिद्धाचल स्तुत्यष्टक और दर्शन द्वात्रिंशिका परिशिष्ट नं० १ और नं० २ में जो इसी पुस्तक के अंत में मुद्रित हैं और महातपस्वीजी की प्रौढ प्रतिभा एवं साहसिक कवि शक्ति का भान कराने के लिये पर्याप्त हैं–देखने को मिलेंगी।

उत्थान पतन की अनेक सीढियों को पार करके तपस्या से मानव जीवन की महत्ता को बताने वाले महातपस्वियों के जीवन चरितों को पढने से हमारा जीवन महान् बनता है। इस लक्ष्य से पूर्वजों के पुण्य चरित्रों का पाठ प्रति दिन होना चाहिये, किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

पूर्वज पुण्य चरित्र को—न पढें न करें गौर।
सींग पूंछ से रहित वे—हैं जगमें जन ढोर॥

बहुत सावधानी रखते हुए भी इस प्रकाशन में प्रेस की एवं संशोधन की असावधानी हो ही गई है। जिनका शुद्धिपत्रक किंचिद् वक्तव्य के बाद ही दिया गया है।

पाठक सुधार कर पढ़ें। कहा भी है—

स्खलना होती सहज में, करते सुजन सुधार।
दुर्जन जन हँसते रहें, यह जगका व्यवहार॥

इस महातपस्वी चरित को पाठक जन लगन के साथ, श्रद्धा के साथ पढकर पुण्य उपार्जन करें और अपने जीवन को पावन बनावें, ऐसी प्रार्थना करता हूं।

प्रार्थी—

महातपस्विपदरज

जिनहरिसागर सूरि



शुद्धाशुद्धिपत्रक

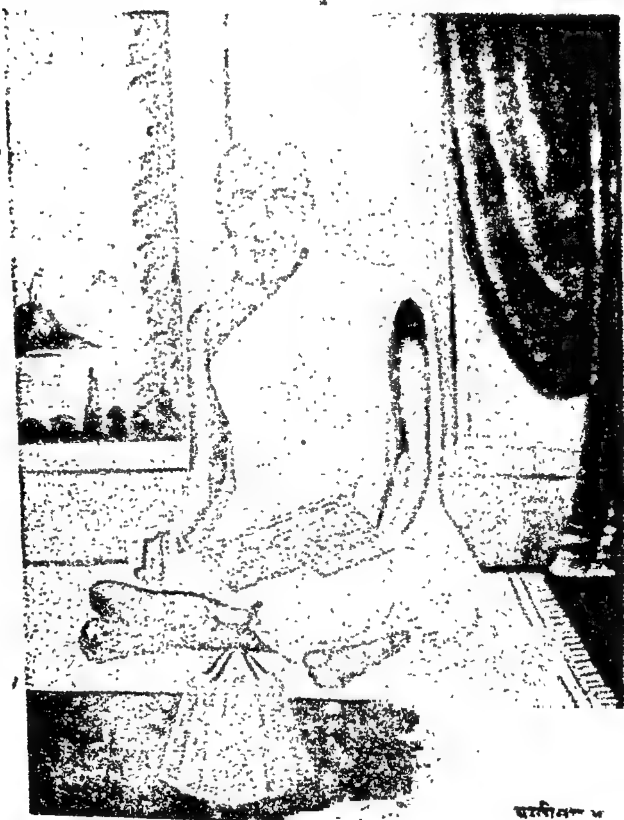
पृष्ठ	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
३	१३	घनाल्य	धनाढ्य
४	७	जनश्रति	जनश्रुति
१२	१२	१६६६	१८६६
१३	१	होन स	होने से
१४	७	अध्यापक मी	अध्यापक भी
२६	८	मुन्मिलितं	मुन्मीलितं
२७	१२	जीवराजजी	जयचन्दजी
३४	६	शौको	शोको
४०	१६	अद्भत	अद्भुत
४४	१६	परिम्रमण	परिभ्रमण
५३	१६	धी	घी
५७	१	मोहनदासजी	माड़दासजी
६०	१४	सुचार	सुचारु
६१	१६	समदडी	सादडी
२	२	संथने	संघने
६२	६	फलनति	फलन्ति
६२	७	गांव:	गाव:
६६	६	वीरमगाम भोयणी	भोयणी वीरमगांम
७३	२१	संघने	संघने
७४	७	संयभी	संयमी
८३	६	अधर्मास्तिकाय	अधर्मास्तिकाय
१२१	१८	अपम्राजना	अपभ्राजना
१२६	४	प्रमावित	प्रभावित
१३४	३	व्यख्या	व्याख्या

प्रातः स्मरणीय पूज्येश्वर गणाधीश्वर गुरुदेव

चरित-नायक महातपस्वी श्री श्री १००८

श्रीमान् छगन-सागरजी महाराज साहब

जन्म सं० १८९५ ज. शु. १२ फलोदी (मारवाड़) दीक्षा सं० १९४२ वैशा. शु. १०



गणाधीशपद संवत १९५७ ज्येष्ठ शुक्ला १४ फलोदी (मारवाड़)

स्वर्गवास सं० १९९९ द्वि. श्रा. शु. ६ लोहावट (मारवाड़)

❀ श्री महातपस्वी सद्गुरु स्तुत्यष्टक ❀

[शिखरिणी छन्दः]

१

महावीर—स्वामी परम—पथगामी प्रथमतः,
सुधर्मा-स्वामी थे गणधर-महात्मा गुणनिधि।
उन्हीं की आज्ञा के सुगुरुगण में प्रौढ महिमा-
तपस्वी पूज्य श्री छगनगुरु की नित्य जय हो॥

२

फलोदी में जन्मे, सुकुल-पितु मातु स्वजन के,
महा हर्षोत्पादी, बहुगुण-गृहस्थी-प्रतिनिधि।
हुए सत्संगी जो सुगुरुपद-रागी फिर हुए,
तपस्वी पूज्य श्री छगनगुरु की नित्य जय हो॥

३

धनी हो दानी हो प्रबल बलशाली जगतमें,
पराये दुःखों को तन-मन लगा दूर करके।
हुए थे जो साधु प्रखरतर पाली व्रतविधि—
तपस्वी पूज्य श्री छगनगुरु की नित्य जय हो॥

४

रहे थे जो भोगी जल-कमल जैसे पुनरपि,
सती स्त्री को लेके तनय-तनया आदि तजके।
ग्रही दीक्षा-शिक्षा परमगुरु में भाव भरके-
तपस्वी पूज्य श्री छगनगुरु की नित्य जय हो॥

५

हुए शास्त्राभ्यासी गुरुगम विलासी विनय से,
सभी सिद्धान्तों को स्व-पर मत के जान करके।

महाज्ञानी हो के प्रचुर महिमा की स्वमत की,
तपस्वी पूज्य श्री छगनगुरु की नित्य जय हो ॥

६

मिटाया मिथ्यात्व प्रतिपल्ल मचाई स्वगुण से,
व्रती हो त्यागी हो अविराति हटाई हृदय से ।
कषायों को जीता दमन करके खूब मनका,
तपस्वी पूज्य श्री छगनगुरु की नित्य जय हो ॥

७

चमत्कारी चारु चारित जिनका था जगत में,
चमत्कारी है श्री अमर पद धारी अब यहाँ ।
मिटादें बाधायें स्मरण करते ही उन महा-
तपस्वी पूज्य श्री छगनगुरु की नित्य जय हो ॥

८

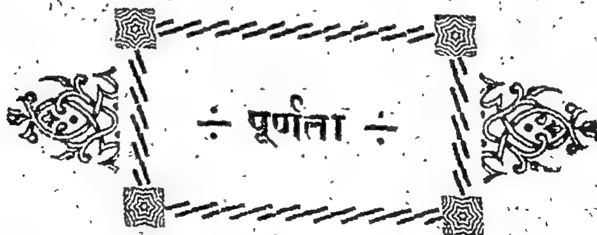
बुढापे में भारी व्रतवर किये बावन अहो,
निराहारी हो के अमर वर लोहावट हुए ।
नमो ध्याओ पूजो जिनहरि कहो भाव मन से
तपस्वी पूज्य श्री छगनगुरु की नित्य जय हो ॥

(इकवीसा छन्दः)

९

पूज्य श्री सुखसागर-गुरु के गणमें गुरु ने दीक्षा ली,
थानसागर गुरु शिष्यकहा भगवान गुरु से शिक्षा ली ।
ज्ञानी ध्यानी धन २ जगमें जिनहरि सबमिल आज कहो,
महातपस्वी पूज्येश्वर श्री छगनगुरु की जय जय हो ॥

—विषय सूचि—


÷ पूर्णता ÷

अर्हं नमः

श्रीमत्सुखसागर-भगवत्परम-गुरुभ्योनमः

ॐ नमो महातवस्सीणं

परमगीतार्थ-परमागम रहस्यवेदी-सर्वतंत्र स्वतंत्र

गणाधीश्वर गुरुदेव पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय-

श्री श्री १००८ श्री

श्रीमान् छगनसागरजी महाराज

卐 महातपस्वी-चरित 卐

—मंगल—

स्वरूपतो ऽ पीतर-रूपतो ऽ पि,
विरोधि-धर्मा अविरोध-भावाः ।
वस्तु-स्थिता येन प्रकाश-भावं,
गतास्तदेवेद महः प्रणौमि ॥

[यह मंगल श्लोक श्रीमहातपस्वीजी महाराज साहब द्वारा विरचित श्री दर्शन द्वात्रिंशका का आदि श्लोक है। पूरी द्वात्रिंशिका एवं श्री सिद्धाचल स्तुत्यष्टक अंत में मुद्रित हैं। उनकी मूलप्रति लोहावट के मेरे भंडार में सुरक्षित है।

इस मंगल श्लोक में पूज्येश्वर महातपस्वीजी महाराज ने उस महाज्योति को नमस्कार किया है जो इस प्रकार है]

संसार की चराचर अनंत वस्तुओं में स्वरूप से भी और पर स्वरूप से भी परस्पर में विरोधी जैसे धर्म अविरोध भाव से रहे हुए हैं। जिस महाज्योति–महाप्रभु के द्वारा उनका प्रकाश हमें प्राप्त हुआ है, उन्हीं की मैं यहां वंदना-स्तवना करता हूं।

इस श्लोक में प्रकारान्तर से पूज्येश्वर ने स्यादस्ति–१ स्यान्नास्ति–२ स्यादस्तिनास्ति–३ स्यादवाच्य–४ स्यादस्ति अवाच्य–५ स्याद्नास्ति अवाच्य–६ स्यादस्तिनास्ति युगपदवाच्य–७ सप्त भंगी का स्वरूप प्रतिपादन किया है।

पूज्येश्वर महातपस्वीजी महाराज के चरित को लिखते हुए मैं भी उस महाज्योति की वंदना स्तवना करता हूं। एवं निर्विघ्न परिसमाप्ति की कामना के साथ स्व–पर मंगल की प्रार्थना उस महाज्योति से व्यक्त करता हूं।

गंगा पापं शशी तापं, दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापं च दैन्यं च, घ्नन्ति सन्तो महाशयाः॥

अर्थात्—गंगा पाप को, चन्द्र ताप को और कल्पद्रुम दैन्य को दूर करता है। परंतु पाप ताप और दीनता को महान आशय वाले संत पुरुष अकेले एक साथ दूर कर देते हैं। इसी लक्ष्य से आज एक महातपस्वी संत पुरुष का चरित लिखा जाता है।

१

❀ जन्म स्थान ❀

जिस वीर भूमि राजस्थान ने राणा प्रताप-वीरवर दुर्गादास जयमल पत्ता आदि वीरों को जन्म देकर अपना सिर ऊँचा किया है। जो भूमि अनेक नररत्नों की खान है। जहां इसने शक्ति के उपासक क्षत्रियों को अपनी गोद में खिलाया है वहां धर्मप्राण उदारचेता सद्धर्मप्रचारक महातपस्वी योगिराज भी इसने उत्पन्न किये हैं। जिनकी कीर्त्ति कौमुदी अनंतकाल तक दिग्दिगन्त में व्याप्त रहेगी।

इसी पुण्य भूमि महान राजस्थान में जोधपुर (मारवाड़) राज्यान्तर्गत फलोदी नाम का एक प्रसिद्ध नगर है। जो अत्यंत मनोहर, स्वर्गसुखों को विस्मृत करानेवाला, ऊंची ऊंची ध्वजापताकाओं से सुशोभित, एवं गढ मठ मन्दिरों आदि से विभूषित है।

इसके पूर्व में एक संकड़ा और गहरा धोलावाला चौपासे में पानी से भरा हुआ खाई की आवश्यकता को पूर्ण करता है। इस नगर की दक्षिण में 'राणीसर' नाम का तालाब अपनी ऊंची २ पालों से दुर्ग के प्राचीर की आवश्यकता को व्यर्थ करता है। पश्चिमोत्तर वायव्य कोण में 'सरस्वती' नदी एवं रामसर शिवसर आदि तालाबों से युक्त सुंदर वाटिकाओं से नगर की कमनीय कान्ति

झलकती है। वहीं एक सुंदर गढ सुदृढ प्रहरी की नांई नगर की रक्षा कर रहा है।

इस प्रकार फलोदी नगर चारों ओर से अपनी अनुपम विशेषताओं से आगन्तुकों का मन मोहित करता है। चतुर शिल्पियों से निर्माण किये हुए कलापूर्ण उत्तुंग शिखर श्रेणि विराजित पांच जिनमंदिर पांच मेरुओं की महिमा को मात देते हैं। ऊंची अट्टालिकाओं से विराजित स्थापत्य कला के सुन्दर नमूने रूप कुबेर का अनुकरण करनेवाले धनी-गृहस्थों के विशाल भवन अलका की शोभा को हराने की कोशिश करते हैं। वहां के बाजार व्यापारियों की न्याय प्रियता से ग्राहक श्रेणियों की चहल पहल के केन्द्र बने हुए हैं।

वहां धनाढ्य लोग अपनी न्यायोपार्जित चंचला लक्ष्मी को विद्यादान धर्मशाला अन्नदान वस्त्रदान आदि व्यवहारिक और धार्मिक कार्यों में लगा कर सफल बनाते हैं। अर्थ और काम की उपासना में भी धर्म की मर्यादा का ख्याल रखते हुए, वहां के निवासी आत्म कल्याण में संलग्न रहते हैं। बड़े ज्ञानी-ध्यानी-तपस्वी महात्माओं के श्रीचरणों की पुनीत धूली से वह नगर पावन होता रहता है। अतः वहां सत्संगी-पुरुष सत्संग के द्वारा मानवजीवन की महत्ता को समझते हैं।

इस प्रकार सुख सम्पत्ति के साथ २ धर्म का सामंजस्य देखकर दुःख और दरिद्रता प्रायः पलायन से हो गये हैं। स्वाभाविक धार्मिक प्रकृति एवं प्रवृत्ति के कारण वहां के सारे कर्मस्थान भी धर्मस्थान का सौभाग्य भोग रहे हैं। लक्ष्मी देवी ने तो फलोदी नगर को अपना निवास स्थान सा बना दिया है।

इस नगर के लिये जनश्रुति प्रसिद्ध है, कि वि. सं० १५१५ में लटियाल देवी जो कि यहां की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं—की प्रेरणा पाकर चारणजी ने इस नगर को बसाया था। इसके चारों ओर पूर्व काल में परकोटा भी बना हुआ था पर कराल-काल की महिमा से आज वह टूट कर भूमिसात हो गया है। जेसलमेर बीकानेर और जोधपुर की तलवारें भी यहां पर कईबार चमकी हैं। पर आज वह जोधपुर (मारवाड़) की प्रधान हुकूमतों में अपना स्थान रखता है।

इस पुण्य भूमि फलोदी में ओसवालों और पुष्करणा ब्राह्मणों के कई बड़े २ मुहल्ले हैं। उनमें चैनपुरा नामक मुहल्ले में सुखी-समृद्ध और सौभाग्यशाली ओसवाल वंशी गोलेछा आदि गोत्र वाले जैनी निवास करते हैं। किसी जमाने में यह चैनपुरा फलोदी से बाहर माना जाता था। पर समय के साथ आबादी के बढ़ जाने से आज वह नगर

के मध्य में केन्द्रित हो रहा है। यहीं इसी चैनपुरे में हमारे चरितनायक महातपस्वीजी ने गोलेछा गोत्र में जन्म ले, जीवन को आलोकित किया था।

२

❀ गोलेछा गोत्र ❀

गोलेछा गोत्र के लिये इतिहास बताता है, कि बारहवीं शती के मध्य भाग में चंदेरी के स्वामी राजा खरहत्थ सिंह थे। उस प्रतापी राजा के अंबदेव नींबदेव भैंसासिंह और आसपाल ऐसे नामवाले चार बलवान पुत्र थे।

उस समय काबुल की ओर से लुंटेरों के टोले इस देश में उपद्रव मचाते हुए जनता में त्राहि २ मचाने लगे थे। राजा खरहत्थ ने अपने क्षात्र धर्म का मान रखते हुए अपने चारों वीर पुत्रों को उन लुटेरों को काबू करने के लिये आज्ञा दी। अपने वीर सुभटों को लेकर उन राजकुमारों ने लुंटेरों को मार भगाया। उस कर्त्तव्य का पालन करते हुए वे चारों राज कुमार भी घायल हो गये। घायल होने से प्राणान्त कष्ट को भोगते हुए अपने पुत्रों को बेहोश देख राजा खरहत्थसिंह किंकर्त्तव्य मूढ सा हो गया।

इसी समय में जैन शासन के स्थंभ रूप आचार्य देव दादा गुरु श्रीजिनदत्त-सूरीश्वरजी महाराज अपनी साधु

मण्डली के साथ विचरते हुए वहाँ पधारे। "भेख में भगवान रहता है"—इस श्रद्धा वाले राजा ने उन गुरु देव को विनय-वंदना की और प्रार्थना की, कि भगवन्! इन मेरे प्राणप्यारे पुत्रों को चिरंजीवी हों, ऐसा जीवातु-कल्प अपना आशीर्वाद प्रदान कीजियें। परम कारुणिक गुरुदेव ने भावी लाभ को लक्ष्य में रखते हुए महामंगल मय-परमेष्ठी मंत्र को सुनाते हुए धर्मलाभ हो—ऐसा पवित्र आशीर्वाद दिया। गुरु की सुधामधुर महामंत्र-वाणी को सुन कर, वे राजकुमार होश में आये, और ये तेजोमूर्ति कौन हैं? ऐसा अपने पिता से प्रश्न करने लगे। पिता ने कहा, इन्हीं गुरुदेव की दया से आज तुम्हें जीवनदान प्राप्त हुआ है। ये मेरे, तुम्हारे जीवन के आधारभूत, भगवान के अवतार रूप गुरुदेव हैं। इन्हें वन्दन करो। राजकुमारों ने बड़े प्रसन्न मन से गुरुदेव की चरणधूली अपने सिर में लगाई, और वंदन किया। चारों ओर आनंद का साम्राज्य छा गया। उस समय ठीक जानकर श्रीगुरुदेव ने महामंगलकारी धर्मोपदेश सुनाया। यथा च—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं—अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति—जस्स धम्मे सया मणो॥

महानुभावों! संसार में उत्कृष्ट मंगल धर्म ही है। उस का अहिंसा से, संयम से और तपश्चर्या से साधन किया

जाता है। उस कर्त्तव्य पालन रूप-धर्म में जिन का मन सदा लगा रहता है! उन धर्मात्मा पुरुषों के चरणों में देवता भी नमस्कार करते हैं।

आप लोग उस अहिंसा रूप परम धर्म के मर्म को समझें, और उसे अपने जीवन में उतारें। किसी प्राणी को मार कर हम अमर नहीं हो सकते। सता कर सुखी नहीं हो सकते। अमर होना हो, और सुखी होना हो, तो दया की भावना से कर्त्तव्यों का पालन करें। आप का धर्म ही आप की रक्षा करेगा।

१—आत्मा के आधार पर हमारा जीवन टिका हुआ है। आत्मा सुख दुःख को भोगता है। आत्मा जैसा हममें है, वैसा ही दूसरे प्राणियों में है। अतः उनकी रक्षा करो।

२—हमारे अच्छे या बुरे कर्त्तव्य हमारी आत्मभूमि में बीज की भांति ऊगते हैं। अच्छे कर्त्तव्य पुण्य, और बुरे काम पाप रूप कहे जाते हैं। काल—स्वभाव—नियति—पूर्व-कृत कर्म और पुरुषार्थ इन पांच कारणों के मिलने से पुण्य बीज के फल सुख शांति आदि होते हैं, तो पाप बीज के फल दुःख अशांति रूप होते हैं। अतः पाप कर्मों से दूर रहो, और पुण्य कर्मों को करते रहो।

३—आत्मा ही संसार को बनाता है, और आत्मा ही मुक्ति को प्राप्त करता है। आत्मा की परमोच्च दशा

ही परमात्मा का रूप है। एवं आत्मा की हीन दशा ही संसार भ्रमण की विचित्रता का उपादान हेतु है। परमात्मा का ध्यान कर के आत्मा को पवित्र बनाओ।

४–आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को बतानेवाले अहिंसा–सत्य–अचौर्य–ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पांच महाव्रतों को धारण करने वाले, संयमी-साधुपुरुष ही सद्गुरु हैं। सद्गुरु की परम कृपा से ही सुदेव और सुधर्म का भान होता है। उसके भान होने पर ही सम्यक्त्व प्राप्त होता है। अतः साधु-गुरु की सेवा से सम्यक्त्व–सच्चे स्वरूप को प्राप्त कर, जीवन को सार्थक बनाओ।

५–भोग उपभोग के साधनों की मर्यादा करने से जीवन ऊँचा उठता है। अतः जुआ नहीं खेलना चाहिये। मांस नहीं खाना चाहिये। वेश्या गमन नहीं करना चाहिये। शराब नहीं पीना चाहिये। शिकार और चोरी त्यागनी चाहिये परस्त्री को मां-बहन-बेटी के समान मानना चाहिये। इससे अपना और दूसरों का कल्याण होता है। आप लोग कल्याण को प्राप्त करें।

इस उपदेश को सुन कर राजा राज-कुमार और अधिकारी वर्ग सभी बड़े प्रसन्न हुए, और गुरुदेव से गुरु दीक्षा पाकर, जैन धर्म के अनुयायी हो गये। तभी से उसी धर्म को मानने वाले ओसवाल–महाजन वंश के साथ महा-

राजा खरहत्थसिंह ने एवं उन के राज कुमारों ने अपना संबंध जोड़ लिया।

उन राज कुमारों में भैंसासिंह के पुत्ररत्न- गेला सिंहजी हुए। उनका पुत्र बच्छराज महा प्रतापी हुआ। बड़े लोग प्यार से- 'गेला बच्छा' बोलने लगे। इस तरह लोगों में उस की प्रसिद्धि अपभ्रंश रूप से- गेला बच्छा गेल-बच्छा-गोलेछा रूप से आज देखी जाती है।

इसी वीर गोलेच्छा गोत्र में हमारे चरित्र-नायक- का जन्म हुआ था। आप के पिता का नाम सागरमलजी था, और माता का नाम श्री चन्दनबाई था। वे दोनों पति पत्नी धर्म परायण, सरल स्वभावी एवं सत्संग के प्रेमी थे।

३

गर्भाधान और जन्मोत्सव

एकेनापि सुवृक्षेण, पुष्पितेन सुगन्धिना।
वासितं तद्वनं सर्वं, सुपुत्रेण कुलं यथा ॥

जैसे सुगन्धी फूलों से समृद्ध- नवपल्लवित ऐसे एक भी अच्छे पेड़ से सारा बन सुगन्धित हो जाता है। उसी प्रकार एक सुपुत्र से भी सारा वंश प्रसिद्धि का पात्र बन जाता है।

पिछली रात्री का समय था। सारा प्राणी जगत् निद्रा देवी की गोदी में विश्राम कर रहा था। रजनी-कांत-चंद्र की प्रभा अपने आलोक को द्विगुणित कर रही थी। जिससे उडुगणों का तेज क्षीण होता जाता था। सर्वत्र शांति का साम्राज्य फैल रहा था। कभी २ पहरेदार-जागते रहो-जागते-रहो कह कर, सब को सचेत कर रहा था। उस समय सागरमल सेठ उठने की तैयारी में भग-वांन का स्मरण कर रहे थे, कि श्रीमती चंदनादेवी अपने शयन घर से अपने पति-देव के पास पधारीं। प्रणाम करके पति की सावधानता में इस प्रकार कहने लगी, कि-प्राण-नाथ! अभी २ अर्ध निद्रित अवस्था में मुझे सूर्य का स्वप्न दिखाई दिया, और मैं जाग उठी हूं। मेरे रोम २ प्रसन्न हो रहे हैं। इस अपूर्व स्वप्न का क्या फल होगा?।

स्वप्न की बात को सुन सेठ अत्यन्त प्रसन्न होकर कहने लगे प्रिये! मालूम होता है कि तुम्हारी रत्नकुक्षी से हमारे घर को आलोकित करनेवाला सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र रत्न पैदा होगा। श्रीमती चंदनादेवी जिन भावों में आन्दोलित हो रही थी, उन्हीं भावों की पतिदेव से प्रेरणा पाकर खुश खुश हो गई।

पति पत्नी दोनों उस आनन्दातिरेक में परम विवेक को धारण करते हुए, अरिहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और साधु भगवान रूप पांच परमेष्टी का ध्यान करने लगे।

अच्छे स्वप्न को देखे बाद सोना नहीं चाहिये। धर्म-जागरण करके अपने पुण्य की वृद्धि करनी चाहिये ऐसा शास्त्रीय वचन सेठ ने गुरुओं से सुन रखा था। विवेकी लोग गुरुवाणी का आदर करते हैं। इसीलिये कल्याण के भागी बनते हैं।

सूर्योदय होने पर सेठ सागरमलजी ने अपने नित्य-कृत्यों को कर के, मंदिरों में देव दर्शन किया। उपाश्रय में जाकर श्री गुरु महाराज को वंदना की। धर्मोपदेश सुना। गुरुदेव फरमा रहे थे, कि "मनुष्यों को अच्छे संस्कार पैदा करने चाहिये। अच्छे संस्कार स्वप्न रूप से साकार होकर संसार में सर्वोच्च भावों को पैदा करते हैं। इसलिये ऊंचे स्वप्न द्रष्टा बनो। कुसंस्कारों से बचो। उकरडी पर सोकर स्वर्ग के स्वप्न नहीं आया करते। हमारे स्वप्न ही भविष्य का आकार प्रकार तैयार करते हैं"।

सेठ सागरमलजी जिन विचारों की उधेडवुन में लगे हुए थे। उन्हीं को श्रीगुरु महाराज व्याख्यान में स्पष्ट कर रहे थे। "इष्टं वैद्योपदिष्टं"-के न्याय से सेठ का मन अंदर ही अंदर प्रमुदित हो रहा था। व्याख्यान की समाप्ति होने पर सेठ ने गुरु महाराज से प्रार्थना की, कि भगवन्! ऊगते सूर्य का स्वप्न दिखाई दे तो क्या फल होता है?। आज आप की श्राविका ने यह स्वप्न देखा है।

गुरुदेव थोडी देर मौन होकर फरमाते हैं। भाग्यशाली ! तुम्हारा सौभाग्य सूर्य चमकने वाला है। तुम्हारे घर में सूर्य-रूप तेजस्वी पुत्र पैदा होगा, और जो संसार में प्रकाश फैलाने वाला होगा। ऊगते सूर्य को देखना बडा लाभ दायक होता है। गुरु की पियूषवाणी का पान करके सेठ प्रमुदित होते हुए घर आये। सेठानी चंदनादेवी से सब हाल कह सुनाया। सेठानी भी प्रसन्न हुई। सूर्योदय होने के समय कमल खिलखिला उठते हैं, उसी प्रकार-सेठ सेठानी के हृदय कमल प्रसन्न-सुप्रसन्न प्रफुल्लित हुए।

उसी रोज से गर्भवती होने के चिह्न सेठानी को भान होने लगे। बात की बात में नव महीने पूर्ण हुए। विक्रम संवत् १९९६ के वर्षारंभ में चैत शुक्ला त्रयोदशी के शुभ लग्न-शुभ घडी संपन्न भगवान श्रीमहावीर देव के जयन्ती-दिन में सेठ सागरमलजी के घर में सेठानी श्रीमती चंदनादेवी की रत्न कूख से हमारे चरित नायक का पुत्ररूप से जन्म हुआ।

फलोदी के उस चैनपुरे में चैन की बंशियां बजने लगी। बधाइयां बँटने लगी। बाजे बजने लगे। धवल मंगल-गीत गाये जाने लगे। सेठ का घर और सारा मोहल्ला उस रोज उत्सवमय प्रतीत होने लगा। कई दिन उत्सव मनाने के, बाद उस नवजात शिशु का नाम कुल में छोगे के जैसा

होने से—छोगमल रखा गया। वही छोगमल आगे जाकर महातपस्वी रूप में जगत का कल्याण करने वाला हुआ।

४

❀ बाल अवस्था-विद्याध्ययन ❀

किं कुलेन विशालेन, विद्याहीनस्य देहिनः।
अकुलीनोऽपि विद्यावान् देवैरपि स पूज्यते॥

अर्थात् विद्याहीन प्राणी के विशाल कुल से क्या? विद्यावान् अकुलीन हो, तो भी वह देवताओं से पूजा जाता है।

छोगमल माता पिता के संरक्षण में दूज के चांद की तरह बढने लगे। सेठ सागरमलजी व्यवसाय के लिये सागर (सी. पी.) में चले गये थे। वहां व्यवसाय में शिथिलता दीखने से उन्हें वापस फलोदी आना पड़ा। उस समय हमारे चरित नायक बालक छोगमल पांच वर्ष के हो चुके थे। यही विद्याध्ययन का समय माना जाता है। अतः सेठ सागरमलजी ने सोचा—

पांच वर्ष तक पालन कीजै,
दश वर्षे हुई शिक्षा दीजै।
सोलह वर्षी जब सुत होवे,
मित्र समान तभी वह होवे॥

अतएव गुरु पुष्य योग (अमृत सिद्धि योग) के शुभ लग्न में पुत्र को पाठशाला भेज दिया। "विद्याग्रहण करने से यशः कीर्ति एवं लक्ष्मी प्राप्ति होती है" । ऐसी गुरुजनों की सत् शिक्षा पाये हुए, बालक छोगमल ने अपने मति-वैभव से एवं गुरु कृपा से अध्ययन में थोड़े परिश्रम से भारी उन्नति करली। सहाध्यायी छात्रों में सर्व प्रथम नंबर आने लगे। अध्यापक भी उनकी कुशाग्र बुद्धि देखकर प्रसन्न रहने लगे। थोड़े ही दिनों में व्यापारिक शिक्षा में उन्नति कर, अपने अध्ययन की परीक्षा में पूर्णतया उत्तीर्ण हुए।

अपने चिरंजीवी को अपने ज्ञान में सुयोग्य पाकर पिताने भी अपने को कृतकृत्य समझा। उस जमाने में अंग्रेजी भाषा की पढाई उतनी बढी चढी नहीं थी। इसलिये उससे पैदा होनेवाले फैसन के फितुर से हमारे चरित नायक बचे रहे थे। आजकल के अंग्रेजी पढे लिखे लड़कों के जैसे मां-बाप के विनय से आपने मुंह नहीं मोड़ा था। मां-बाप की सेवा, देव-गुरु और धर्म की सेवा, आप बड़े प्यार से-श्रद्धा पूर्वक करते थे।

आपने विद्या पढकर आत्मा का स्वरूप नहीं भुलाया था। समय पर सामायिक-देव पूजा-गुरुदर्शन, शास्त्र श्रवण, सत्संग आदि कार्यों में भी उदासीनता-उपेक्षा नहीं दिखाई

थी। धर्म से आपको प्रेम था। गुरुजनों में आपका आदर था। विद्या के साथ विनय और विवेक आपके जीवन में जुड़ से गये थे। ठीक कहा है —

जड विज्ञानी जीव को, हो जडता से प्रेम।
यातें बढी आशांतियां, नहीं धरम ना नेम॥
आतम योगी जीव को–आतम का ही भान।
आतम हो परमातमा–सुख शान्ति का थान॥

५

❀ गृहस्थाश्रम प्रवेश ❀

अवस्था के क्रम से बालक छोगमल ने बचपन को पार कर जवानी में प्रवेश किया। उस समय उनमें बचपन की सरलता एवं बुढापे के अनुभव जवानी के जोश के साथ दिखाई देने लगे। उन के कुलशील–वैभव की योग्यता को देख, नगर के कई प्रतिष्ठित लोगों ने उनके साथ अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव सागरमल सेठ के सामने रखा। अपने सुयोग्य पुत्र के लिये पिताने भी जाती के मुखिया झावक गोत्रीय श्रीयुत अक्षयचन्दजी से उनकी गुणशील संपन्न कन्या रत्न श्रीमती चुन्नीबाई का संबंध निश्चित किया। दो तीन साल बाद चरित नायक छोगमलजी का बडे समारोह के साथ पाणिग्रहण संपन्न हो गया। सुयोग्य दम्पती

आनंद के साथ अपने गृहस्थाश्रम की गाडी को चलाने लगे।

समय सरीता के प्रवाह के समान बीतता जाता है। संसार परिवर्तनशील—अनित्य है। यहां जो आज है, वह कल नहीं रहेगा, और जो कल था, वह आज नहीं है। सूर्य भी दिन में तीन अवस्थाएँ प्राप्त करता है। वसंत के फूल समय पाकर धूल में मिलते जाते हैं। काल की इस प्रबल गति को रोकने की सामर्थ्य इंद्र-चंद्र-नागेंद्र-नरेन्द्र-कीट-पतंग किसी में नहीं है। सारा संसार काल कवलित बना हुआ है।

इसी काल की छाया सेठ सागरमलजी पर पडने लगी। सम्यग् दृष्टि होने के नाते वे इसके लिये भी सतर्क बने हुए थे। शोकहीन भावों से आपने अपनी अंतिम तैयारी जिनेश्वर भगवान के ध्यान से करनी शुरु की। घर भार सुयोग्य पुत्रों को सौंप दिया। हमारे चरित नायक आपके मझले पुत्र थे। पिताने अपने तीनों पुत्रों को गृहस्थाश्रम की उचित शिक्षा देते हुए गृह भार संभला दिया। आत्म ध्यान में लीन होते हुए स्वयं इस नश्वर शरीर को छोड़ कर परलोक सिधार गये। तीनों पुत्रों ने पूर्णायु में स्वर्गवासी पिता का और्ध्वदैहिक कृत्य बडी योग्यता के साथ संपादन करके पूर्ण यशः प्राप्त किया।

इस प्रकार हमारे चरित नायक छोगमलजी पूर्णतया गृहस्थाश्रमी बन गये। फिर भी आपकी वृत्तियां मलकीट के समान न होती हुई, जल कमल के समान निर्लिप्त भाव-वाली थी। कहा भी है कि—

सम्मकित दृष्टि जीवड़ो- करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर-गत न्यारो रहे-ज्यों धाव खिलावे बाल॥

पितृ-वियोग के बाद कितने ही काल तक तीनों भाई मिलजुल कर व्यापार करते रहे। समयने साथ नहीं दिया। स्वभावानुरूप लक्ष्मी ने अपनी चंचलता दिखाई। व्यापार में हानि होती गई। भाइयों में भी मनो-मालिन्य बढा। "जितने भाई उतने घर हुआ करते हैं" तीनों भाई जुदा हुए। सेठ सागरमलजी के ज़माने में घरमें-गृहमंदिर था। उसे श्रीऋषभदेव भगवान के मंदिर में ले जाया गया। अभक्ति से बचना भी तो एक धर्म है। विपदि धैर्य-महान आत्माओं का लक्षण धारण करते हुए श्री छोगमलजी जीवन यापन करने लगे।

॥ ६ ॥

॥ विदेश गमन ॥

व्यापारान्तर मुत्सृज्य-वीक्षमाणो वधूमुखम्।
यो गृहेष्वेव निद्राति-दारिद्राति स दुर्मतिः॥

जो गृहस्थ व्यापारान्तरों को छोड़कर स्त्री का मुख देखता हुआ घर में ही पड़ा रहता है। वह दुर्मति दारिद्र्य को पैदा करता है।

एक दिन एकान्त-स्थित छोगमलजी के हृदय में गृहस्थाश्रम की चिन्ता करते हुए विचार पैदा हुआ, कि हाथ पर हाथ धरे बैठने से कोई काम नहीं बना करता। जीवन निर्वाह के लिये कोई न कोई व्यवसाय अवश्य करना चाहिये। पक्षी भी दिन भर अन्न संग्रह कर रात में घोंसले में आराम करते हैं। पक्षी भी कर्त्तव्य पालन करते हैं। यदि मनुष्य कर्त्तव्य पालन नहीं करता तो वह उन-पक्षियों से भी गया बीता माना, जाता है। इस प्रकार की विचार धारा से प्रेरित हो आपने परदेश में जाकर धन कमाने का निश्चय किया।

उस समय रेलों का पूरा प्रबन्ध नहीं हुआ था। ऊंटों से प्रायः सवारी का काम लिया जाता था। मारवाड़ रेगिस्तान में ऊंट रेल मोटरों को भी मात देते हैं। पोस्ट ओफिस तार ओफिसों का सिलसिला भी पूर्ण रूप से हुआ नहीं था। मार्ग दुर्गम एवं संकटापन्न हुआ करते थे। विदेश से महीनों में कोई समाचार आते थे। गंतव्य स्थान-में पहुंचने में काफी समय लगता था। इसलिये रास्ते में सामान भी काफी रखना पड़ता था। इन सब कठिनाइयों

का सामना करते हुए हमारे चरित नायक वराड देश में बारसी गांव में पहुंचे। वहां फलोदी के ही रंगाजी की बडी दुकान थी। उसमें आपने गुमास्तागिरी की। वहां की बोली, रीति-रिवाज से अपरिचित होने के कारण आपको प्रारंभ में कुछ कठिनाई सी लगी पर "किमज्ञेयंहि धीमतां"—आवश्यकता अपने आप आविष्कार की जननी होती है। कठिनाई मिट ही गई।

लगन से कार्य होने लगा। तीन वर्ष बीत गये। खासा अनुभव बढ़ गया। स्वदेश की याद आ गई। जन्म भूमि की विशेषता स्वर्ग से भी बढ़ कर होती है। कहा भी है—

जनम भोमरी जोड, बुधियां कोई न कर सके।
सुरगां भारी खोड, उठे न कोई आपणो॥

सेठ की आज्ञा ले छोगमलजी लौट कर घर आ गये। साल भर तक स्वतंत्रता के साथ फलोदी में सानंद रहे। उस समय आपको एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। जिसका नाम गंभीरमल रखा गया।

सालभर बाद प्रशस्त मुहूर्त में फिर बारसी के लिये आपने प्रस्थान किया। इस समय गुमास्ता रूप से नहीं, बल्कि दुकान के प्रधान मुनीम-रूप से आपकी नियुक्ति हो गई थी। ठीक ही है—'गुणाः पूजा स्थानं' हुआ करता

है। सबको काम प्यारा होता है, नहीं कि चाम। रंगाजी ने हमारे चरित नायक की योग्यता को पहिचाना, और उन्हें दुकान का सर्वाधिकारी बना दिया।

७

❁ अद्भुत-घटना ❁

वने जने शत्रु-जलाग्नि मध्ये,
महार्णवे पर्वत-मस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषम-स्थितं वा,
रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि॥

जंगल में, या जनपद में शत्रुओं के बीच, या जल अग्नि के बीच, महासागर में, या शिखरी पर सोते हुए की बेहोश हुए की अथवा विषम अवस्था में अवस्थित प्राणी की पूर्व में किए पुण्य-कर्म ही रक्षा करते हैं।

फाल्गुन का महीना था। वसंत की मादकता सब के दिलों में भर चुकी थी। सर्वत्र होरी-सारंग-फाग गाये जाते थे। गुलाल उड़ रही थी। गोठों की तैयारियां होती थीं। हमारे चरित-नायक भी अपने साथियों के साथ प्रसन्नता के प्रोग्राम बना रहे थे। गुमास्तों को आज्ञा दी गई कि प्रातः जल्दी जगा देना। सब लोग आराम की नींद सो गये। परन्तु न ज्ञातं जान की पतिना, भविष्यति

कि प्रभाते वै–कि तरह किसी को कुछ पता नहीं था, कि कोई अघटित घटना घटने वाली है, अस्तु ।

बरार में सोगिया-भूतयोनि विशेष प्रेतों का उन दिनों अधिक जोर था । नये अनजान मनुष्यों पर ये अपना अधिकार जमा लिया करते थे। आधी रात के बाद किसी ने पुकारा 'मुनीमजी उठिये, सवेरा हो गया' । वे उठे और शौच के लिये जल भरा लोटा हाथ लिये घर से बाहर निकले देखा तो कोई नहीं था । सोचा आगे चले गये होंगे । स्वयं गांव के बाहिर जंगल के लिये आ गये । प्रेत के प्रभाव से बाद में श्री छोगमलजी को स्वत्व का भान न रहा । उसी आवेश में उन्हें खाने का, पीने का, सोने का, ठहरने का कोई खयाल न रहा । कहां जाता हूं, उसका भी पता न रहा। पूरे पांच दिन और पांच रात इसी प्रकार भ्रान्त दशा में विचरण होता रहा । हाथ में पानी भरा लोटा था। इसलिये प्रेत प्राण न ले सका । अन्यथा प्राणों को खतरा था । पूरे अड़तालीस कोस दूर बारसी हो गया ।

मुनीमजी अविश्रांत भाव से गति कर रहे थे । शरीर की हालत भयंकर हो रही थी । सौभाग्य से किसी स्याने ने उन्हें देखा । जान लिया कि ये प्रेत-ग्रस्त हैं । मुनीमजी को उसने ठहरा कर पूछा । आप कौन हैं ? कहां जाते हैं ? इस प्रश्न का कोई जबाब न देते हुए चरित नायक छोग-

मलजी बेहोशी में जमीन पर गिर गये। उस स्याने ने जल छांट कर उन्हें सचेत किया। पूछा, कहां जाते हो? आपने उत्तर दिया, जंगल। इस भयंकर दशा में कहां से आ-रहे हो? कब से यह हालत है? जब आपने कुछ देर ठहर कर पूर्णतया सचेत हो कहा-बारसी के रंगों का मुनीम हूं। उसने कहा बारसी तो ४८ कोस दूर है। कब चले थे? मुनीमजी ने पूछा, आज कौन तिथि है? उसने कहा सप्तमी। ओह! पांच दिन हो गये!!

मुनीमजी को बड़ी बेचैनी हुई। कैसे पहुंचुंगा? वहां के लोग क्या सोचते होंगे? स्याने ने धीरज बंधा कर कहा, न घबराइयें। मैं पहुँचा दूंगा, उसने अपनी बैल गाड़ी से उन्हें बारसी पहुँचा दिया। आपके एकाएक गुम हो जाने से, बारसी में हलचल मच गई थी। चारों ओर शोध खोज हो रही थी। आप जब बारसी के बाजार में पहुंचे तो व्यापारी गुमास्ते बड़े खुश होकर, पूछने लगे, मुनीम साहब! कहां पधारे थे? शरीर की यह हालत कैसे हो गई? हम तो बडे बेचैन रहे। आप तो बिना कहे सुने चल दिये!।

मुनीमजीने दुकान पर पहुँच कर जीवन की घटना सुनाई, तो सभी लोग आश्चर्यान्वित हो गये, और कहने लगे कि 'जाको राखे सांइयां मार सके ना कोय'-बड़ा

अच्छा हुआ, जो आप पधार गये। बडी शांति हुई। उस स्याने को मुनीमजी ने प्रसन्नता पूर्वक पारितोषिक प्रदान किया। सर्वत्र प्रसन्नता और, शांति की लहर दौड़ गई।

८

❋ हैदराबाद गमन-सत्संग प्रसंग ❋

महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नति-कारकः।
पद्मपत्र-स्थितं वारि-धत्ते मुक्ताफल-श्रियम्॥

महाजनों का सत्संग किस की उन्नति नहीं करता? सबकी उन्नति करता है। यह सही है कि-कमल की पांखुडी पर पड़ा हुआ, पानी का बिंदु-मोतियों की शोभा को धारण कर लेता है।

हमारे चरितनायक छोगमलजी ने पुरुषार्थ और कार्य कुशलता से बारसी में अच्छा नाम कमा लिया। कालांतर में आप स्वदेश लौटे। फलोदी में आये बाद, आपको द्वितीय पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। आपने उसका नाम पापुलाल रखा। पुण्य के ठाठ बढते गये। जीवन अधिकाधिक सुख से बीतने लगा।

करीब साल भर स्वदेश में रह कर, आप हैदराबाद गये। वहां आपको यशः कीर्ति और धन दोनों का लाभ हुआ। साथ ही छोगमलजी श्रावक जैसे सुयोग्य धार्मिक-

विचारों वाले सत्पुरुष के सत्संग का लाभ भी होने लगा। उनके साथ सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, प्रभुपूजन आदि होने लगा। धार्मिक अभिरुचि बढने लगी। चरितनायक-छोगमलजी गोलेछा का धार्मिक सत्पुरुष छोगमलजी झाबक-के साथ–कांचन मणि संयोग के समान ज्योति बढाने वाला संबंध हुआ।

छोगमलजी झाबक फलोदी के निवासी धार्मिक वृत्ति-वाले पापभीरु पुरुष थे। आपको 'देवचन्द्र चौवीसी–आगमसार–आनंदघन चौवीसी आदि भक्तिप्रधान और तत्वज्ञान प्रधान साहित्य की विचारणा में बड़ा रस मालूम देता था। धर्म विचार से शून्य एक दिन भी उनको कष्ट-दायक प्रतीत होता था। अपने मिलने वालों से भी वे प्रायः धार्मिक चर्चा में अधिक आनंद मानते थे। ऐसे सत्पुरुष के संयोग से हमारे चरित नायक की भी आत्म-जागृति बढने लगी।

४८ मिनिट के सामायिक में मनसा वाचा कर्मणा-पापों के त्याग से दर्शन ज्ञान और चारित्र का लाभ आत्म प्रत्यक्ष होने लगा। जड़–चेतन का विवेक होने से, अना-सक्ति बढ़ने लगी। संतान परंपरा से अनादि संबंध वाले आठ कर्मों का विचार स्फुरित होने लगा। बंध उदय उदीरणा और सत्ता के स्वरूप ज्ञान से मन में प्रफुल्लित

होना, और दुःख में मुर्छित हो जाना छूट गया। आत्मा के प्रति आपका प्रेम जागृत हुआ। संसार में—"आत्मा वै उपासितव्यः"—आपने अपना सिद्धान्त बना लिया। देव-गुरु धर्म के सच्चे स्वरूप को जान कर उनके प्रति अनन्य श्रद्धा पैदा हो गई। इस प्रकार हमारे चरितनायक आदर्श जीवन रूप भवन की नींव मजबूत बनाने लगे। कहते भी हैं—

टाटी उपर तीन छत, देख्या लुपया न कोय।
अभ्यासी अभ्यास गत, जीवन उन्नत होय॥

हैदराबाद में चरित-नायक छोगमलजी ने धार्मिक जीवन के साथ २ आर्थिक जीवन में भी उन्नति की। अत-एव पुरुषार्थ के द्वारा पूर्वकृत कर्म-अंतराय के मिटने से वहां आपकी लक्ष्मी बढ़ने लगी। चांडकों की संपन्न पेढी-के सुयोग्य मुनीम होने के नाते आपकी व्यापारी समाज-में मान प्रतिष्ठा काफी बढी। जिससे आप अच्छी मात्रा में वहां स्वतंत्र व्यापार के अधिकारी हुए। इस प्रकार यौवन में धर्म और धन के संयोग से आपका जीवन आदर्श होने लगा। कालान्तर में आप स्वदेश लौट आये। फलोदी में आये बाद आपके एक कन्या की अभिवृद्धि हुई। पहिले दो पुत्र तो थे, ही तीसरी बार कन्या प्राप्ति का होना बड़ी प्रसन्नता का कारण हुआ। इसी लिये उस पुत्री का नाम

आपने रतनकुँवर रखा। श्रीमती चुन्नीबाई के साथ सुखी जीवन बिताते हुए दो पुत्र और एक पुत्री के पिता रूप आपने अपने अच्छे संस्कार अपनी संतान में भी डाले। एक आदर्श गृहस्थ होने के नाते आपका जीवन लोकों की दृष्टि में परमश्रद्धा का पात्र बन गया।

९.

॥ परम गुरु की प्राप्ति ॥

अज्ञान-तिमिरान्धानां-ज्ञानाञ्जन-शलाकया।
नेत्रमुन्मिलितं येन-तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

अज्ञान के अन्धकार - जाल से अन्धों के जीवन में सम्यग् ज्ञान रूप सुरमे की शलाका से जिनने विवेकरूप नेत्र खोले हैं, उन श्री सद्गुरुदेव को भाव नमस्कार हो।

पहिले बताया जा चुका है, कि फलोदी (मारवाड) में ज्ञानी-ध्यानी-तपस्वी महात्माओं के श्रीचरण होते रहते हैं। ऐसे महात्माओं में परमोच्च पंच महाव्रतों को धारण करने वाले, हमेशा निष्पाप जीवन वृत्ति को रखने-वाले, दूसरों को निष्पाप होने की प्रेरणा करने वाले जैन शासन की खरतर सुविहित साधना को साधनेवाले, साधु शिरोमणि, सच्चे सुखों के सागर रूप परमगुरु देव गणाधीश्वर श्री श्री सुखसागरजी महाराज का भी मच्यो-

पकार करते हुए पधारना हो गया। आपकी करणी और कथनी के सामंजस्य को देख कर स्थानीय जनता परम आदर के साथ आपके सदुपदेशों को सुनती थी।

हमारे चरित नायक श्री छोगमलजी गोलेछा को उनके दर्शन करने का, एवं उपदेश सुनने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी प्रशान्त मुखमुद्रा, अमृत सी वाणि, असिधारासी तीव्र पालना, इन सबने आपको विशेषतया आकृष्ट किया—सम्यक्त्व रंग में रंग दिया। उन्हीं परमगुरु के पास आपने प्रतिक्रमण सूत्र—अर्थ पढा, जीव-विचार जाना, नवतत्त्व समझे, कर्म सिद्धान्त का बारिकी से अध्ययन किया। आपके साथी छोगमलजी बरडिया, मूलचंदजी नीमाणी रेखचंदजी कोचर, जीवराजजी लूणावत आदि ऊंची कोटि के जिज्ञासु मर्मज्ञ और मुमुक्षु थे। उन सहयोगियों-के साथ उन परमगुरु देव से आपने—आचारांग, स्थानांग सूत्रकृतांग, समवायांग, भगवती प्रमुख जैन आगमों को विधिवत् सुना, और समझने की कोशीश करते रहे।

एक दिन आत्मा और परमात्मा का विचार हो रहा था। श्री गुरुदेव फरमा रहे थे—

नो इंदियगेज्झ अमुत्त—भावा,

अमुत्त—भावा वि अ होइ निच्चो।

अज्झत्थ हेउं नियपस्स बंधो,
संसार–हेउं च वयंति बंधं ॥

उत्तराध्ययन—१४—१६

स्वरूप से आत्मा वर्ण-गंध-रस-स्पर्श रहित होने से अमूर्त होता है। इसीलिये वह इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है। पर्याय-अवस्था विशेप—की अपेक्षा से अनित्यता को भजता हुआ भी वह अमूर्त स्वरूप वाला आत्मा नित्य है। अज्ञान-अव्रत कपाय और कलुपित वृत्तियों से उसका बन्ध—संबंध कर्मों से होता है। वह बंध ही संसार की विचित्रताओं में प्रधान कारण हो जाता है। यह ज्ञानी पुरुषों का फरमाना है। इस का निष्कर्प यह निकला कि आत्मा के अपने अशुद्ध अध्यवसायों से संसार बनता है, और उस अशुद्धता के मिटने से शुद्धता के होने पर आत्मा परमात्मा रूप परिणत हो जाता है।

उस समय हमारे चरित नायक छोगमलजी ने गुरुदेव से विनय पूर्वक पूछा कि भगवन्! क्या हम भी परमात्मा हो सकते हैं! गुरुदेव ने फरमाया अवश्य। पहिले आत्मा की श्रद्धा पैदा करो। मैं जीता हूं—मैं हूं यह जानता हुआ भी जीव मरने के समय अनजान—बेहोश होकर हाय! मैं मर रहा हूं, अब मैं न रहूंगा-का भान करने लगता है, यही जीव का मिथ्यात्व—अज्ञान है। इस मिथ्यात्व को

मिटादो-अभ्यास करो मैं न मरता हूं, न मरूंगा। आत्मा तो अजर अमर है। हर हालत में प्रसन्न रहो, और अपने स्वरूप का भान बनाये रखो। इससे आत्मा का दर्शन होगा। तभी तुम परमात्मा होने के मार्ग के अनुगामी बनकर परमात्मा बन जाओगे।

आत्मा अनंत हैं वैसे परमात्मा भी अनंत हैं। यह बात संख्या की दृष्टि से कही जाती है। स्वरूप की अपेक्षा से तो सभी एक हैं। इसीलिये-ठाणांग सूत्र के -'एगे आया'-सूत्र में स्वरूप वर्णनापेक्षया आत्मा का एकत्व प्रतिपादन किया गया है।

आत्मा की एकान्तिक और आत्यन्तिक सत्ता का स्वीकार सही रूप में कर लेना ही सम्यक्त्व कहा जाता है। उससे उलटा मिथ्यात्व परिणाम विशेष ही है। उसे पलट दो सम्यक्त्व हो जायगा। सम्यक्त्व में हेय ज्ञेय और उपादेय वस्तु स्वरूप-का भान हो जाता है। पर स्वरूप-वासनाएं-भोग-उपभोग ये सब हेय-छोड़ने योग्य हैं। स्व और पर दोनों प्रकार के स्वरूप ज्ञेय-जानने योग्य हैं। स्व-स्वरूप एवं उसकी प्राप्ति के साधन देव-गुरु की भक्ति, व्रत नियम रूप धर्म की साधना, आदि उपादेय-स्वीकार करने योग्य बताये गये हैं। इनको न करना एवं न मानना ही मूल में भूल मानी जाती है। इस भूल के

मिटने से आत्मा परमात्मा बन जाती है। बस इस प्रकार तुम परमात्मा बन सकते हो।

परम-गुरु की वाणी रूप पियूष को पीकर चरित-नायक अपने को धन्य मानने लगे। गुरुदेव को वंदन कर प्रार्थना की, कि भगवन्ः मुझे आप अपना चरण सेवक-साधु बनायेंगे! क्या? गुरुजी ने फरमाया, समय आने पर। अभी तुम्हारे भोग कर्म बाकी हैं। शिष्य लोभ से दीक्षा देना अनुचित है। तुम्हारी तदवस्था होगी, तभी साधु होना, तुम्हारे लिये श्रेयस्कर होगा। धन्य गुरु! और धन्य भक्त !!।

उसी रोज मोक्ष का बीज चरित नायक की आत्म भूमि में परमगुरु द्वारा बो दिया गया।

१०

❀ संसार से उदासीनता ❀

अयमविचारितं चारुतया, संसारो भाति रमणीयः।
अत्र पुनः परमार्थ-दृशा न किमपि सारमणीयः॥

यह संसार जब तक ठीक तरह से नहीं विचारा जाता है। तब तक सुन्दर प्रतीत होता है। परमार्थ-तात्विक दृष्टि से देखा जाता है, तो इसमें अणु मात्र-कुछ भी सार नहीं है।

चरित-नायक छोगमलजी सद्गुरु के सत्संग से सम्यक्त्व शुद्धि के द्वारा आत्म-लाभ करते हुए, देशरूप-से-परिमित मात्रा में व्रतों का पालन करने लगे। गृहस्थाश्रम की मर्यादा को निभाते हुए, आपको एक पुत्र रत्न की और प्राप्ति हुई। उसका नाम चांदमल रखा गया। इसके बाद आप-सती स्त्री चुन्नीबाई के साथ पूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन करने लगे। बडे और मझले लड़के का आपने बडे ठाठ से ब्याह कर दिया। पुत्री श्री रत्न बाई का संबंध भी सुजानमलजी कोचर जो कि एक सुयोग्य संपन्न घराने के व्यक्ति थे-उनके साथ फलोदी में ही कर दिया।

इस प्रकार गृहस्थाश्रम की झंझटों को संकुचित करते हुए आप, प्रसन्नता पूर्वक जीवन निर्वाह कर रहे थे। उस समय आपके छोटे पुत्र चांदमल का अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। इससे आपको संसार में अधिकाधिक असारता मालूम देने लगी।

इसी अवसर में पुण्य की साक्षात् मूर्तिरूप साध्वी श्रेष्ठा श्रीमती पुण्यश्रीजी महोदया अपनी सुयोग्य संयमावतार-शिष्याओं को साथ लेकर फलोदी में पधारीं। भगवान् श्री महावीर देव के परम पुनीत शासन में साध्वियां भी एक स्तंभ रूप मानी जाती हैं। बाहुबली जैसे अभिमान-के हाथी पर आरूढ होने वाले तद्भव मोक्षगामी महर्षियों-

को ठिकाने लाने वाली, रथनेमि जैसे संयम मार्ग से पतित साधुओं को वापस साधुता में स्थिर करने वाली, करकंडु जैसे प्रत्येक-बुद्धावतार राजाओं को महायुद्ध में शान्ति का मार्ग दिखाने वाली ये साध्वियां ही तो थीं—और हैं। श्रीमती पुण्यश्रीजी की अमृतवाणी कठोर आत्माओं को भी कोमल बना देती थी। आप पूज्येश्वर गणाधीश्वर श्री-सुखसागरजी महाराज साहब की आज्ञानुयायिनी साध्वी-प्रवर्तिनी थी।

उक्त प्रवर्तिनीजी का उपदेश स्थानीय जैन संघ में धारा प्रवाह से परम ज्ञान मय, वैराग्य मय हुआ करता था। व्याख्यान के समय उपस्थित जनता में हमारे चरित्र नायक छोगमलजी भी बराबर मनोयोग पूर्वक भाग लेते थे। व्याख्यान में बताया जा रहा था कि—

खणमेत्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा,
पगाम दुक्खा अनिगाम सुक्खा।
संसार-मोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा॥

भव्यात्माओं! इन्द्रियों के विषय-काम भोग क्षणमात्र सुख देने वाले, और बहुत काल तक दुःख के कारणभूत होते हैं। अधिक दुःख वाले और थोडे सुख वाले होते हैं। कर्मबंध जनित संसार की मुक्ति के विपक्षभूत होते हैं। अतएव कामभोगों को ज्ञानियों ने [illegible]

फरमाया है इन विषयों के भोगनेवाले अव्रती कहे जाते हैं। अव्रती आत्मा त्यागके अभाव में अपने आपको दुर्गति के भागी बना लेते हैं। प्रजापाल राजाके जैसे वे पुरुष धन्य हैं। जो विवेक के द्वारा भोगों की अवस्था का भान करके उन्हें छोड़ देते हैं।

राजा प्रजापाल राज-भोगों को भोगते हुए गुलाब के फूलों की पांखुडियों से बनी शय्या में सोया करते थे। एक दिन शय्या बनाने वाले ने-फूलों की सेज बिछाकर देखूं कैसा आनंद आता है ? सोचकर उस पर सो गया। कोमलता खुशबू एवं भावी भाव के कारण उसे उसी दम नींद आगई अचानक उसी क्षण राजा भी वहां आगये। नौकर के इस अविनय को देख क्रोध करके दो चार कोडे लगाकर राजाने नौकर को जगा दिया। राजा को देखकर नौकर खिलखिला कर हंस पड़ा। राजा ने पूछा—बता क्यों हंसता है ? क्या जोरदार कोड़ों की मार भूल गया ?। नौकर ने कहा देव ! मुझे इसलिये हँसी आ रही है, कि इस फूल-शय्या में मैं पांच मिनिट करीब सोता होऊंगा, कि ये कोडे मुझे खाने पडे। महाराज तो हमेशा पोढते हैं ! कितने कोडे पडेंगे !! क्या यह विचारने योग्य बात नहीं है !!! उन्हीं विचारों से हँसता हूं।

नौकर की इस तत्त्व भरी बात को सुन राजा की विवेक चक्षुएँ खुल गईं। वह त्यागी होकर तपस्वी बन

मोक्ष का अधिकारी हुआ। राजा कब हुआ? कहां हुआ? इस चर्चा का यह समय नहीं है। फूलशय्या का भोग कोडों की सजा है, इसको समझना चाहिये।

इस भाव भरी कथा से हमारे चरितनायक को प्रवर्तमान त्याग भावों में भारी प्रेरणा प्राप्त हुई। गृहस्थावस्था को छोडने की भावना मजबूत हो गई।

११

❁ पति-पत्नी के एक भाव ❁

दम्पत्योरेकमत्यं चेत्-सर्व-कर्मसु सर्वदा।
स्वर्गायते मर्त्यलोकः-न शोको जायते क्वचित्॥

हमेशा यदि पति और पत्नी सब कामों में एकमत वाले होते हैं। तो उनका मर्त्य लोक स्वर्ग के समान हो जाता है, एवं उनको कहीं भी शोक नहीं होता।

कमल कीच में पैदा होता है। पानी से बढ़ता है। फिर भी वह कीच और पानी से लिप्त नहीं। होता उपर ही रहता है इसी तरह महानुभाव छोगमलजी गोलेछा संसार में पैदा होकर भोगों से बढ़ कर भी निर्लिप्त भावों से कमल के समान अपने विकसित जीवन को बिता रहे थे। आपने अपनी धर्म पत्नी श्रीमती चुन्नीबाई से प्रस्ताव

किया कि अब मेरा मन संसार को छोडकर साधु बनने की करता है। मेरे इस कार्य से तुम्हें दुःख तो नहीं है न?।

तुम्हारे जैसी सुयोग्य गृहिणी को पाकर मुझे अपने जीवन में कोई कष्ट नहीं हुआ। मेरे द्वारा तुम्हें यदि कोई कष्ट हुआ हो तो क्षमा कर देना। मैं तुम्हें श्रद्धा की निगाह से देखता हूं। इसी से तुम्हारी आज्ञा चाहता हुं, कि-मुझे तुम साधु बनने की छूट दे दो। तुम्हारी सेवा करने वाले दो पुत्र, एक पुत्री मौजूद हैं ही। पतिदेव के इन आदर और प्यारभरे वैराग्य पूर्ण वचनों को सुन, गृहस्वामिनी कहती हैं, प्राणनाथ! सती स्त्री के लिये पति ही सब कुछ होता है। आज ही नहीं कई महिनों से मैं आप की इस त्याग भावना को देख रही हूं। आज तो आपने इस प्रस्ताव के द्वारा विशेष स्पष्टीकरण कर दिया है। प्यारे! क्या इस साधु मार्ग को मैं स्वीकार नहीं कर सकती?। मुझे आज का यह आपका साधु होने की इच्छावाला विचार दुःखदायी मालूम नहीं देता। मैं तो स्वयं आपका अनुगमन करके साध्वी दीक्षा को पाना चाहती हूं। लडके लडकी योग्य हो चुके हैं। इनके प्रति अपना जो कर्त्तव्य था, पूर्ण किया जा चुका है। आप मुझे भी आज्ञा दें कि मैं साध्वी बनकर आत्म-कल्याण करूं।

विवेकवती सती पत्नी के इन आदर्श और समान

भाव वाले विचारों को जानकर चरित नायक बड़े प्रसन्न हुए, और कहने लगे कि देवी तुम धन्य हो। तुमने मेरी एक उलझन ही नहीं सुलझाई, बल्कि एक अपूर्व प्रेरणा-बल मुझमें भर दिया है। तुम्हारे इन उदार विचारों से मेरी आत्मा परम संतुष्ट है, और मुझे प्रसन्नता है, कि तुम भी साध्वी बनकर आत्म-कल्याण करो।

ज्ञानियों ने फरमाया है, कि पुरुषों के समान ही स्त्री भी मुक्ति की अधिकारिणी है। कभी २ पुरुष पाप कर्मों में बढ़ भी जाता है, पर स्त्री उतनी पापिनी होती ही नहीं है। मनुष्य जन्म। सद्गुरु के पास शास्त्रों के सुनने का लाभ। सुने हुए शास्त्रों में हेय ज्ञेय और उपादेय भावों में छोडने की, जानने की, एवं स्वीकार करने की क्षमता रूप श्रद्धा। एवं श्रद्धानुरूप आचरण कर संयम में शक्ति को लगाना, पुरुष के समान ही स्त्री को प्राप्त होता है। सम्यग् दर्शन सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को प्राप्त कर तुम भी मोक्षमार्ग की अनुगामिनी हो सकती हो।

इस प्रकार पति पत्नी के एक विचार हो जाने से दोनों का मार्ग बड़ा प्रशस्त हो गया। दोनों ही भगवान श्रीमहावीर देव के शासन की सेवा करने की लगन वाले हुए। दोनों ही पूर्ण-अहिंसा-सत्य-अचौर्य-ब्रह्मचर्य और निस्पृहता रूप पांच महाव्रतों को पालन करने की भाव-

नावाले होगये। धन्य हैं ऐसे पति और पत्नी, जो कर्ममें एवं धर्म में समान विचार वाले होते हैं।

१२

❁ सद्गुरु का उपदेश—दीक्षा की तैयारी ❁

विवेक एव व्यसनं-पुंजं क्षपयितुं क्षमः।
अपहर्तुं समर्थोऽसौ-रविरेव निशातमः॥

जैसे रात्री के अन्धकार को दूर करने में सूर्य ही समर्थ होता है। वैसे ही मनुष्यों को कष्टों के मिटाने में भी एक विवेक ही समर्थ होता है।

विवेकी मनुष्य को ही सद्गुरू का उपदेश जल्दी असर करता है। निर्मल दर्पण में ही तो पदार्थों का प्रतिबिम्ब ठीक दीखता है। हमारे चरित-नायक परम-विवेकी होने के नाते वीतराग प्रभु के दर्शन और निस्पृही गुरुओं के उपदेश का लाभ लेने में कभी नहीं चूकते थे। आप के परम सौभाग्य से आप की भावना को मूर्त होने का समय प्राप्त हुआ। सद्गुरु देव श्रीमान् सुखसागर जी महाराज साहब ग्रामनु ग्राम विचरते हुए फलोदी में पधारे। चरित-नायक ने एकबार पहिले भी उनके दर्शन का लाभ लिया था। उनके द्वारा ही आप सम्यक्त्व रंग में पूर्णतया रंग गये थे।

उन पूज्येश्वर गुरुदेव ने अपना प्रवचन फरमाना शुरु किया। चरितनायक भी बराबर ध्यान पूर्वक आदि से अन्त तक व्याख्यान सुना करते थे। एक दिन गुरुदेवने वीतरागवाणी में फरमाया कि—

दुपरिच्चिया इमेकामा, नो सुजहा अधीर पुरिसेहिं।
अह संति सुव्वया साहु, जे तरंति अतरं वणिया व॥

दुःख से छूटनेवाले ये काम-भोग कायर पुरुषों द्वारा सुख से नहीं छूटते हैं। जो धीर सुव्रती साधु होते हैं, वे जहाजों से व्यापार करने वाले-पोतवणिकों के समान अतर-ऐसे अनंत संसार सागर को पार कर जाते हैं। संसार के दुःखमय स्वरूप को जानकर भी जो उसे छोडने का पुरुषार्थ नहीं करते वे—जाणुं हूं सेठ के समान हँसी के पात्र होते हैं। एक सेठ की कथा है कि—

सेठ सेठानी रात्री में अपने महल में सोते हैं। चोर आये, उनकी आहट से सेठानी जगी, और सेठ को जगाकर बोली—चोर आये मालूम होते हैं—सेठ कहता है कि मैं जाणुं हूं। सेठानी ने थोडी देर में कहा चोर सेंध लगाकर दीवार फोडते हैं—सेठने कहा जाणुं हूं। चोरों द्वारा फेंके हुए प्रकाश को देखकर सेठानी ने कहा दीवार फूट चुकी है, चोर घुसने वाले हैं, कुछ तो करो—सेठ कहता है जाणुं हूं। चोर अंदर घुस कर तीजोरी तोड धन माल ले जाने

लगे। सेठानी कहती है अब तो उठो—सेठ कहता है जाणुं हूँ। आखिर चोर निकल गये। सेठानी चेताती रही, और सेठ कहता रहा जाणुं हूँ। परन्तु उस जानकारी से उस सेठ की दरिद्रता बढी ही, घटी नहीं।

इसी प्रकार संसारी जीव दुखों को जानते हुए भी उनको मिटाने के लिये पुरुषार्थ नहीं करते। यह एक महान दुःख का विषय है।

गुरुदेव के इस सारगर्भित उपदेश का असर हमारे चरित नायक पर खूब जोरों से हुआ। गुरुदेव से आपने प्रार्थना की कि—भगवन् ! आपके इस उपदेश से मेरे प्रमाद के पटल टूट चुके हैं। मैं आज अपनी चिरकाल की भावना को आपके पास दीक्षा लेकर सफल करना चाहता हूं। गुरुजी ने फरमाया—अवसर को नहीं चूकना चाहिये।

समय न चूको चतुर नर—कहते कविजन कूक।
चतुरन के खटकत हिये—समय चूक की हूक॥

हमारे चरित नायकने घर आकर, पत्नी की सलाह ले, कुटुंबियों से अपनी एवं पत्नी की दीक्षा के लिये आज्ञा प्राप्त की, और दीक्षा की तैयारी करने लगे।

१३

❁ दीक्षा का समारोह ❁

पच्छा वि जे पयाया खिप्पं गच्छंति अमर भवणाइं।
जेसिं पियो तवो संजमो य खंतियं बंभचेरं च ॥

दशवैकालिक अ. ४

पिछली अवस्था में भी जो लोग भागवती दीक्षा को स्वीकार करते हैं। एवं जिन्हें तप–संयम–क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय हैं। वे तपस्वी–साधु जल्दी से अमर लोक-में चले जाते हैं।

सम्यक्त्व–नारकी के जीवों में भी हो सकता है। श्रावकत्व तिर्यंचों में भी सुना जाता है, परंतु सर्व त्याग रूप–साधु धर्म केवल भाग्यशाली मनुष्यों को ही प्राप्त होता है। इसलिये उसे प्राप्त करना आसान नहीं है। केवल कपड़े बदलने का नाम, या मुण्डित होने का नाम ही साधुत्व नहीं है। निष्पाप मार्ग की साधना करने व कराने वाले महा-मानव ही साधुता के अधिकारी होते हैं।

हमारे चरितनायक उन्हीं महामानवों में से एक ज्योतिर्धर महामानव थे। पत्नी का सहयोग, कुटुम्बियों की अनुमति, आत्मा का अद्भुत पुरुषार्थ एवं सद्गुरुदेवकी परम कृपा ये सब आपकी साधुता के उपादान और निमित्त कारण कार्य सिद्धि में परम सहायक हुए।

दीक्षा के लिये बड़े ठाठ से समारोह प्रारंभ हुआ। भगवान श्री ऋषभदेव स्वामी के स्थानीय मंदिर में भग-

वान की पूजा का अष्टाह्निक महोत्सव प्रारंभ हुआ। पूजाएं होने लगी, प्रभावनाएं बँटने लगी, दीक्षा के समय निर्ममत्व भाव से दिये जाने वाला संवत्सरी दान गरीब गुरबों में बांटा जाने लगा। धवल मंगल सधवा स्त्रियों द्वारा गाये जाने लगे। नौबत नगारे, सहनाइयां बजने लगी। दीक्षा होने से पूर्व संबंधियों ने आदरपूर्वक आग्रह के साथ अपने यहां भोजन कराने के लिये विनोले जिमाये। कंगन दोरडे बांधे गये। उत्साहित होकर दूर २ के लोग यह सुनकर कि स्वर्गीय सेठ सागरमल जी के पुत्र रत्न श्री छोगमल जी अपनी धर्मपत्नी के साथ गृहस्थाश्रम का त्याग कर साधु-धर्म स्वीकारने वाले हैं, मिलने को आने लगे। प्रत्येक के मुँह पर धन्यवाद के शब्द मुखरित होने लगे। प्रायः सभी जाती एवं सभी वर्ण के लोगों ने नजदीक से एवं दूर से आपके दर्शन कर अपको कृतार्थ माना। दंपती के त्याग की मुक्त कण्ठ से आबाल वृद्ध प्रशंसा करने लगे। धन्य वह दिन, धन्य वह घडी। धन्य वह वंश, धन्य वह जाती जिसमें जन्म लेकर हमारे चरितनायक ने आदर्श त्याग मार्ग को स्वीकार किया।

दीक्षा के लिये निकले हुए आपके महाभिनिष्क्रमण-जलूस को देखने के लिये लोग हर्षातिरेक के साथ उमड रहे थे। चैनपुरे से निकला हुआ जलूस शहर में

घूम कर स्थानीय राणीसर तलाव की पाल पर आई हुई श्री दादावाडी के सुविशाल स्थान में सजाये हुए नंदी मंडप में पहुंचा वि० सं० १९४२ के वैशाख शुक्ला १० श्री गुरुवार के दिन स्थिर लग्न में आपने गृहस्थ वेश को छोड़ कर सिर मुंडन करा कर चद्दर, चोलपट्टा ओघा मुंहपत्ती, काष्टपात्र, दंडा पुस्तक आदि साधु वेश धारण किया, परम गुरु श्री सुखसागर जी महाराज साहब के वरद करकमलों से आप दीक्षित हुए। पूज्य श्री थानसागर जी महाराज के नाम से आपको विधिवत् दीक्षा दी गई। उस समय साधु अवस्था के नाम संस्कार की उद्घोषणा करते हुए पूज्य गुरुदेव श्री भगवान सागर जी महाराज साहब ने इस प्रकार परिचय कराया। कोटिक गण, चन्द्र कुल, वज्र शाखा, खरतर विरुद, उपाध्याय श्रीक्षमाकल्याणजी महाराज की वासक्षेप, वर्तमान में श्री सुखसागरजी महाराज का समुदाय श्री थानसागर जी के शिष्य श्री छगन सागर जी नाम। इस प्रकार तीन वार उच्चारण किया गया।

उसी समय विराग भाव को धारण करने वाली श्रीमती सुश्रीबाई ने भी गृहस्थ वेश का त्याग कर साध्वी वेश धारण किया। एवं पूज्येश्वर गुरुदेव के पास विधिवत्-दीक्षा ग्रहण की। पूर्ववत् कोटिकगण, चन्द्रकुल, वज्र शाखा,

खरतर विरुद क्षमाकल्याण जी महाराज की वासक्षेप वर्तमान में श्री सुख सागर जी महाराज का समुदाय प्रवर्तिनी श्री पुण्य श्री जी की शिष्या श्री चांद श्री जी नाम तीन वार उद्घोषित किया गया।

उपस्थित समस्त जन संघने एवं जनताने भगवान् श्री महावीर देव की जय। दादा गुरुदेव की जय श्री सुखसागरजी महाराज की जय के साथ समस्त उपस्थित पूज्यों की जय बोलते हुए–श्रीछगनसागरजी महाराज की जय–श्रीमती चांदश्रीजी महाराज की जय–इस प्रकार गगन घोषीनाद से जयघोष किया। सगे संबन्धी परिजनों ने उदार भाव से नवदीक्षितों के सिर परसे उवार कर रुपये सेवकों को निछरावल दिये। श्रीफल की प्रभावना बांटी। साथ ही कई भव्यात्मा श्रावक श्राविकाओं ने यथा शक्ति व्रत–पच्चक्खाण श्रीगुरुदेव के पास किये। इस प्रकार यह दीक्षा का समारोह बडा शानदार अभूतपूर्व ठाठ के साथ संपन्न हुआ। उपस्थित जनता के सामने नवदीक्षितों को लक्ष्य करके पूज्येश्वर गणाधीश्वरजी महाराज साहब ने प्रवचन फरमाया था। वह आगे के प्रकरण में पाठक मनन पूर्वक पढ़ें।

१४

❀ नव दीक्षितों को उपदेश ❀

पूरयित्वार्थिनामाशां-प्रियं कृत्वा द्विषामपि।
पारं गत्वाश्रुतौघस्य-धन्या व्रत मुपासते ॥

अर्थियों की आशा पूर्ण करके, दुश्मनों का भी प्रिय हित करके, एवं शास्त्रीय तत्त्वों का पार पाकर के, धन्य पुरुष ही व्रत-चारित्र धर्म की उपासना करते हैं।

भव्यात्माओं! मनुष्य जन्म प्राप्त हो सकता है, पर मनुष्यत्व का प्राप्त होना बडा दुर्लभ है। मनुष्यत्व का अर्थ है कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का विचार करना। कर्त्तव्या कर्त्तव्य के भानसे शून्य मनुष्य को सींग पूंछ विना का पशु कहा जाता है। यों तो बंदरों को भी वा-नर-विकल्प से नर कहा जाता है। पर वे हैं पशु ही। मनुष्यता का अर्थ है; स्वयं सुख से जीना, और दूसरों को भी सुख से जीने का अधिकार है, इसको मान्य करते हुए, वैसा व्यवहार करना।

मनुष्यता का आधार आत्मा है। यह आत्मा अनंत काल से संसार-परिभ्रमण करता हुआ, पृथ्वी-पानी-आग-वायु और वनस्पति इन पांच स्थावरों में शरीर को धारण कर उस २ रूप से रहा है। कर्म के क्षयोपशम से उत्तरोत्तर पुण्य के प्रकर्ष से दो इंद्रिय वाले लट-कृमी आदि रूपों में, तीन इंद्रियवाले चींटी-जू दीमक आदि रूपों में, चार इंद्रियवाले बिच्छू-भौंरे-तीड आदि रूपों में, और पांच

इन्द्रियवाले नारकी-तिर्यंच-मनुष्य और देवता आदि रूपोंमें, देह धारण कर रहा है–करता है। एवं मोक्ष होने से पहिले तक करता रहेगा। व्यवहार नय से कर्मों को करने वाला, कर्मफलों को–सुख–दुःखों को भोगने वाला भी आत्मा ही होता है।

वही आत्मा काल, स्वभाव, नियति पूर्वकृत–कर्म और पुरुषार्थ की तथारूपता से कर्मों के क्षयोपशम से आर्य देश एवं आर्यकुल में मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है। पुण्य के प्रसंग से मार्गानुसारी होता हुआ भगवान श्रीवीतराग देव की वाणी को सुनने का अधिकारी होता है। प्रत्येक कानवाला व्यक्ति सुनता तो है पर वीतराग को वीतराग रूपमें सुननेवाले व्यक्ति विरले ही हुआ करते हैं। सत्य को सत्य रूपमें अंगीकार नहीं किया जाता तब तक मनुष्य उसका लाभ नहीं पा सकता है। एक कान से सुनकर दूसरे कानसे निकाल देनेवाला व्यक्ति उस पुतली के समान फूटी कौडी की किम्मत का होता है।

राजा जितशत्रु की सभा में कारीगर दो पुतलियां समान रूप से बना लाया, और कीम्मत करा देने की राजा से प्रार्थना की। राजा ने मंत्रियों से कहा, पुतली की कीम्मत कर दो दोनों जब एक सी पुतलियां हैं। तब एक सी कीम्मत कह देनी चाहिये। ऐसा विचार मंत्री लोग

कर रहे थे, कि—वयो वृद्ध मंत्री ने कहा— कारीगर ने स्वयं पुतलियों को बनाई हैं। वह पुतलियों की कीम्मत जनता ही है। हमारी बुद्धि परीक्षा के लिये ही इन पुत्तलियों को वह लाया है। गौर कर इन्हें देखो। इसमें कुछ भेद है। सबने चौंक कर पूछा, वह क्या भेद है? बताइयें। मंत्रीजी ने कहा। दोरा बट कर कान में डालो। डोरा एक पुत्तली के कान में आर पार हो गया। दूसरी के पेट में उतर गया। जिसके कान में डाला डोरा आर पार हो गया वह पुत्तली फुटी कौडी की है, और दूसरी अनमोल है। इस बात को देख सुन कर राजा एवं दूसरे मंत्री सभी प्रसन्न हुए। कारीगर ने उस महा मंत्री की बुद्धि की बडी सराहना की। फूटे कान का आदमी भी फूटी कौडी का होता है।

इस कथा का सारांश है कि सुन कर चिंतन मनन और निदिध्यासन करना चाहिये। वीतराग वाणी से जड चेतन का भेद निर्धारित कर, चेतन के प्रति अनन्य श्रद्धा धारण करनी चाहिये। चेतन रूप—आत्माकी श्रद्धा अनादि काल से आत्मा को नहीं है। मैं—हूं आदि अस्मिता भरे शब्दों का उच्चारण करने वाला प्राणी मरने के समय मैं—हूं को भूल, हाय हाय करता है। मैं—हूं के सही स्वरूप को जानने वाले आदमी अमरता के दिव्य भावोंका साक्षात्कार करता है महात्मा आनन्दघन जी की वाणी में—

"अब हम अमर भये न मरेंगे"—गाने लगता है। अपने आप विकास के मार्ग में अग्रसर होता हुआ संयम में शक्ति का सदुपयोग करता है। तभी वह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

महानुभावों ! आज तुमने भुक्त भोगी होकर संयम लिया है। इसे निरतिचार पालन कर स्व-पर का कल्याण करना। भगवान श्री महावीर देव के सच्चे सिपाही बनकर शासन की सेवा करना। विवेक पूर्वक का—तुम्हारा यह त्याग, संसार त्याग का-मोक्ष का कारण बनो। ऐसा हमारा आशीर्वाद एवं प्रेरणा हम तुम्हारे लिये करते हैं।

इस प्रकार गुरुदेव के सार गर्भित उपदेश को सुन-कर, हमारे चरित नायक नवदीक्षित महात्मा श्री छगन सागर जी ने एवं साध्वी चांदश्रीजी ने विनय पूर्वक-'मत्थेण वंदामि' कह कर, कहा कि, भगवन् ! आपकी आज्ञा को हम सदा मानते रहेंगे। गुरुदेव ने मंगल पाठ सुना कर व्याख्यान समाप्त किया। श्रोताओं ने जय घोष के साथ, इस लघुदीक्षा—समारोह की पूर्णता कर—गुरुमहिमा का गुण गान करते हुए अपना २ रास्ता लिया।

॥ १५ ॥

❀ विहार और अध्ययन ❀

नैकस्थान स्थितिं कुर्यात्—साधुः सत्साधनोद्यतः।
प्राप्नुयाद् ज्ञान—नैर्मल्यं-सदागम—विचारतः॥

सत्साधना–आत्मसाधना में लगने वाले साधु को एक स्थानमें स्थिति–निवास नहीं करना चाहिये। क्योंकि सत् आगम के विचार से अथवा आगमानुकूल विहार से ज्ञान की निर्मलता प्राप्त होती है।

हमारे चरितनायक ने छोटे परिवार के संबंध को तोडकर सारे संसार से अपना संबंध जोड लिया। ठीक ही तो है, साधु पुरुप–'आत्मवत्सर्वभूतेपु'–अथवा–'वसुधैव कुटुम्बकम्-की भावनावाले हुआ करते हैं। गणाधीश्वर गुरुदेव श्रीसुखसागरजी महाराज साहब की आज्ञा को पाकर पूज्येश्वर श्रीभगवानसागरजी महाराज साहब नव दीक्षित महात्मा श्रीछगनसागरजी को लेकर फलोदी से पूर्व में ढाई तीन मील के फासले पर खीचंद गांव में पधारे। खीचंद में करीब डेढ सौ घर जैनियों की बस्ती के हैं। वहां चौवीसत्था पार्श्वनाथ भगवान का सुंदर मन्दिर है। धर्मशाला एवं दो दादावाडियां बनी हुई हैं। स्थानीय संघने उन पूज्य श्री का सुंदर स्वागत किया। आपके भाव भरे व्याख्यान हुए। एवं तत्त्वचर्चा भी हुई।

उस समय हमारे चरितनायक मुनि श्रीछगनसागरजी महाराज का अभ्यास चलता था। पैंतीस बोलों का थोकडा पढा जाता था। उसमें मिथ्यात्व के दश बोलों का विचार चल रहा था। जीव को अजीव रूप, और अजीव को जीव

रूप सरदहने से मिथ्यात्व होता है। कुछ श्रावकों ने जिज्ञासा की कि भगवन्! जिनेश्वर देव तो जीव रूप थे, और उन की मूर्ति अजीव है। फिर स्नात्र पूजा में यह कैसे गाया जाता है– "जिन प्रतिमा जिन सारखी कही सूत्र मझार"। इसी तरह से द्रव्य पूजा में जल फल फूल ये सचित्त होते हैं। पानी ढोलने से पानी के जीव मरते हैं। फल फूल तोड़ने से वनस्पति काय के जीव मरते हैं। जीव मरने से हिंसा लगती है और जहां हिंसा है, वहां अधर्म है। अगर ऐसा है, तो द्रव्य पूजा को धर्म मानना मिथ्यात्व नहीं है क्या?।

गुरुदेव ने फरमाया कि– भव्यात्माओं! श्री जिनेश्वर भगवान् की प्रतिमा के द्वारा श्री जिनेश्वर देव के आदर्शों की श्रद्धा की जाती है। प्रतिमा में जीव की श्रद्धा नहीं की जाती है – प्रतिमा के द्वारा स्वरुप स्मरण से भगवान् की श्रद्धा की जाती है। इससे तो मिथ्यात्व मिटता है। अजीव ऐसा ओघा मुहपत्ती भी साधु की श्रद्धा कराता है। अजीव ऐसी पुस्तकें भी भगवान् की वाणी की श्रद्धा करा देती हैं। क्या इस की ओर कभी ध्यान नहीं दिया है? ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे में – नाम स्थापना द्रव्य और भाव ऐसे चार सत्य बताये हैं। प्रतिमा–स्थापना सत्य है। इस सत्य को जाने बाद ठाणांग के दशवें ठाणे में ये दश बोल पढ़े जाते हैं।

हिंसा अधर्म जरूर है। पर हिंसा का लक्षण भी तो स्थिर करो। प्रमाद योग से प्राणी के प्राणों को मिटाना हिंसा है। विवेक पूर्वक की हुई क्रिया में हिंसा नहीं होती। देखो—आचारांग आदि सूत्रों में साधु विहार की विधि आती है। विहार में यतना—विवेक—पूर्वक गति करने वाले साधु-को हिंसक नहीं कहा है। साधु के लिये जैसे विहार की आज्ञा सूत्र में है, वैसे द्रव्य पूजा करने की आज्ञा महानिशीथ-रायपसेणी; भगवती-ज्ञाता आदि सूत्रों में विधान की गई है। निश्चित है कि द्रव्यपूजा से भगवान की भाव पूजा के परिणाम पैदा होते हैं। जिससे आत्मा पवित्र होता है। इसलिये द्रव्यपूजा—अधर्म नहीं, धर्म है। जैन दर्शन कर्म-बन्ध का आधार दिखावटी—बाह्य क्रिया मात्र को नहीं मानता। क्रिया के साथ जैसे परिणाम होते हैं, वैसा बंध होता है।

गुरुदेव के इस सहेतुक व्याख्यान को सुन कर कई भव्यात्माओं ने भगवान के प्रति अपनी श्रद्धा मजबूत और निर्मल की। ऐसी तत्व चर्चाओं से श्री छगन सागर जी का अध्ययन भी प्रशस्त होने लगा। आपने सूत्र अर्थ और तदुभय का अध्ययन गुरु गम से अच्छे ढंग से प्रमाद को छोड़ कर परम पुरुषार्थ से करना शुरु किया। आपका—ज्ञान भी उज्वल होता हुआ स्व-पर के कल्याण का हेतु बना। इस प्रकार आप छेदोपस्थापनीय चारित्र-

के-अधिकारी हुए। अभी तक आप छोटी दीक्षा-सामायिक चारित्र में थे। सामायिक चारित्र का समय छह महीने का माना जाता है।

इस तरह खीचन्द में उपदेशामृत वर्षाते हुए भव्यात्माओं को धर्म मार्ग में दृढ बनाते हुए आप फलोदी से आठ कोस दूर लोहावट कस्बे में पधारे। यहीं पर हमारे चरित्र नायक को छेदोपस्थापनीय चारित्र-बृहद्दीक्षा प्राप्त हुई।

१६

❀ बृहद्दीक्षा—समारोह ❀

पुरुषार्थी सुव्रतात्मा - सद्गुरोश्चरणानुगः।
सिद्धिं संसाधयेत्साधु-रप्रमत्तमनाः पराम् ॥

श्री सद्गुरु के चरणों का अनुगामी पुरुषार्थी अप्रमत्त मनवाला व्रती-साधु उत्कृष्ट-परासिद्धि को प्राप्त करता है।

जेठ महीने की कडी गरमी में मारवाड के धूली प्रधान-रेतीले प्रदेश में भी अपने वस्त्र पात्र अपने आप उठाकर खुले पैरों से, सब प्रकार की सवारियों का सदा के लिये त्याग करके हाथों से बालों को उखाड कर त्याग भावना को प्रस्तुत करते हुए नाई की और कपडों की

सफाई के लिये धोबी की आवश्यकता को न रखते हुए स्वावलम्बी जीवन बीताना जैन साधु का ही काम है। अपने पास कौडी भी न रखते हुए, गृहस्थ ने अपने लिये बनाई हुई रसोई में से परिमित आहार-पानी लेकर अहिंसा, सत्य अचौर्य-ब्रह्मचर्य-और अपरिग्रहत्व को धारण करते हुए उपदेश द्वारा दूसरों को अध्यात्मिक लाभ को देने वाले जैन साधु उन बावन लाख बाबाओं के जैसे समाज के व देश के भार भूत नहीं हैं। जैन-साधुओं के आदर्श उपदेशों के कारण ही जैन समाज का देश में रीढ़ की हड्डी के जैसा सम्माननीय स्थान रहा है।

उन्ही जैन साधुओं में आदर्श गिने जाने वाले सुविहित खरतर आचार विचार के प्रवर्तक पूज्यपाद भगवान सागर जी महाराज हमारे चरित नायक महात्मा श्री छगन सागर जी को साथ ले धर्म साधना पूर्वक प्रचार करते हुए लोहावट के श्रावकों की श्रद्धा भक्ति के स्थान बन गये। कुछ दिनों बाद-आपने नवदीक्षित साधु छगन सागर जी की बडी दीक्षा करने की भावना से श्री गणाधीश्वर जी महाराज की सेवा में फलोदी जाने का विचार प्रस्तुत किया। तब संघ के मुखिया पारख श्री सालिगराम जी, सहजराम जी, रतनचन्द जी, हजारीमल जी, रावलमल जी, एवं कोचर श्री चतुर्भुज जी आदिकोंने प्रार्थना की कि भगवन्! बडी दीक्षा हमारे इस गांव में होनी

चाहिये। हम पूज्येश्वर गणाधीश्वर जी महाराज साहब को भी यहीं पधारने की विनती करेंगे। श्रावकों की विनती को मान्य कर पूज्येश्वर फलोदी से लोहावट श्री स्थान सागर जी महाराज के साथ पधारे।

लोहावट में उस समय अपूर्व उत्साह की लहर छा गई थी। भगवान श्री पार्श्वनाथ स्वामी का अष्टाहिक महोत्सव हुआ। पूजा–प्रभावना–व्याख्यान–व्रत–प्रत्याख्यान–सामायिक पौषध--प्रतिक्रमण–स्वामीवात्सल्य आदि के ठाठ होने लगे। वि० सं० १९४२ के जेठ सुदी आठम के दिन स्थिर लग्न में--नंदी महोत्सव पूर्वक बडी दीक्षा की क्रिया करा कर पूज्येश्वर गणाधीश जी महाराज ने श्री छगन सागर जी को पंचमहाव्रतों का उच्चारण कराया पूर्व की दीक्षा पर्याय का छेद कर महाव्रत रूप चारित्र धर्म में उपस्थापना कर दी गई।

बडी दीक्षा के दिन आपने उपवास किया। इसकी साधना पनरह दिन तक होती है। जिसमें अलूणे और लूखे धान की कोई चीज ओर पानी इन दो द्रव्यों का उपयोग होता है—ऐसे एक बार भोजन करने रूप आयंबिल तप और घी, दूध, दही, तेल मिठाई और तली हुई वस्तु के त्याग पूर्वक एक स्थान में एक बार भोजन करने रूप नीवी तप विधि पूर्वक किया जाता है।

बडी दीक्षा करा कर पूज्येश्वर गणाधीश्वर जी महाराज साहब और श्री स्थान सागर जी महाराज वापस फलोदी पधारे। उन्हीं की आज्ञा प्राप्त कर श्रीमान् भगवान सागर जी महाराज साहब और श्री छगन सागर जी महाराज–पली आदि गांवों को पवित्र करते हुए, खींवसर में भगवान श्री महावीर स्वामी के श्री चरणों का दर्शन कर आत्मा को पवित्र मानते हुए नागोर पधारे।

१७

० नागोर चतुर्मास ०

सजला जायते जीव—बहुला पङ्किला मही।
गतागतिं न कुर्वन्ति— तेन वर्षासु साधवः॥

वर्षा ऋतु में पानी बरसने से पृथ्वी कीचड वाली और जीवोत्पत्ति की अधिकता वाली हो जाती है। इसी-कारण से वर्षा ऋतु में धर्मार्थी साधु लोग ग्रामान्तर की गतागति को नहीं करते हैं।

मारवाड में नागोर की महिमा–'नागीणो नितको मलो'—कह कर गाई जाती है। नागोर सोलख–सपाद लक्ष-प्रदेश का केन्द्र माना जाता है। वीरवर अमरसिंह राठोड ने इसी वीर भूमि में जन्म लेकर ठेठ बादशाह के

घर में–आगरा में क्षत्रियों की अमर गाथा गवाई थी। नागोर के ही वीर ओसवाल ने जगत सेठ की प्रधान पदवी को प्राप्त की थी। नागोर के अणु–परमाणु में वीर गाथाएं भरी पड़ी हैं। इसी वीर भूमि नागोर नगर में वि० सं० १९४२ का चतुर्मास हमारे चरित नायक महात्मा श्री छगन सागर जी को साथ लेकर गुरुदेव श्री भगवान सागर जी महाराज ने किया।

गुरुदेव के पधारने से नागोर के जैन संघ में तो अपूर्व उत्साह था ही पर जैनेतर जनता भी आपके दर्शन से कृतार्थता का अनुभव करने लगी। सत्संग सभायें होने लगी। श्रीउपासकदशा सूत्र का व्याख्यान गुरुदेव फरमाने लगे। आनंद–आदिक दश श्रावकों के ऐतिहासिक चरित की बडे रोचक ढंग से व्याख्या होने लगी। श्रावक के बारह व्रतों का वर्णन होने लगा। गृहस्थी का अर्थ केवल भोग भोगना ही नहीं है। भोग में भी त्याग की उपासना रहनी चाहिये। तभी आत्मा में शांति प्राप्त होती है। त्याग के बिना जीवन अशांत और केवल क्लेश मय बना रहता है। नागोर भर में इसी त्याग धर्म की प्रधानता वाली चर्चा होने लगी। लोग कहने लगे हमारे परम सौभाग्य से बडे अच्छे साधु पधारे हैं।

मानों गुरुदेव के सम्मान के लिये ही इन्द्रदेव ने

आकाश में तैयारी की। अनुकूल वायुमण्डल तैयार होने लगा। घनघटायें छाने लगीं। बिजलियां चमकने लगी। वर्षा होने लगी। संताप की मात्रा मिटने लगी। चारों ओर आनंद की लहरें फैलने लगी। हमारे चरितनायक महात्मा श्री छगनसागरजी ने सोचा गुरु की भक्ति द्वारा मैं मेरी शक्ति का अंदाज लगाऊं और तपश्चर्या से कर्मों को खपाऊं। चौमासी चउदश से ही उपवास करना प्रारंभ किया। एक दो तीन बढते हुए पूरा महीना उपवास करके बीता दिया। महात्माओं की महिमा से बड़ुकोटडी के उपाश्रय में सारा नागोर दीखने लगा। तालाब जल से भरे थे, और लोगों के दिल धर्म की भावना से भरे थे। मास-क्षमण की पूर्णता के पहिले बोरडी के विसाल मंदिर में अष्टाह्निक महोत्सव-पूजा-प्रभावना के ठाठ लगे। पूर्णता के रोज श्रीसंघ ने रथयात्रा का जलूस अभूतपूर्व ढंग से निकाला। रूपचंदजी की बगीची-मंदिर के घोडावतों के वास के मंदिर के दफतरी मोहल्ले के चोवीसरथाजी के मंदिर के हीरावाडी के मंदिर के दर्शन किये। बाजे बजने लगे गीत गाये जाने लगे। भाविक लोगों ने भी पंचरंगी तपस्या करके तपस्वीजी का साथ किया था। धन्य वह समय। पारणे के दिन लोगों ने घरों में कई तैयारियां की। गुरुदेव से प्रार्थना की। उपाश्रय के नजदीक रहने वाले पुरोहित खानदान के श्री भगवानदासजी नारायणदासजी शिवदास

जी मोहनदासजी दामोदरजी आदि भद्रपुरुषों ने यह अपूर्व अवसर जानकर महात्माओं के पैर पकड़ लीये, और हमारे यहां का अन्नजल आपको लेना ही होगा–विनती की। गुरुदेव ने लाभ जानकर तपस्वीजी के साथ सब से पहिले उन्हीं के घर गोचरी की गवेषणा की। पुरोहितजी भगवानदास जी आदिकों ने कई धार्मिक नियम लिये। बडे आनंद का अनुभव किया। लक्ष्मी ने भी उनपर कृपा की। आज भी पुरोहितजी की हवेली अपनी इज्जत रखती है। श्रावकों के दिल भी ऐसे गुरु की भक्ति से गद गद हो गये।

कुशलराज जी सोभागमलजी मूलतानमलजी कोठारी जेवंतमलजी रावतमलजी डागा अमरचंदजी खजानची आदि मुखिया श्रावकों ने बडे ठाठ से स्वामीवात्सल्य किया। दादागुरुदेव की पूजाएँ पढाई।

गुरुदेव के पास आगमों का जैन दर्शन का अभ्यास आपने किया। साथ ही स्थानीय वखतसागर पर रहने वाले महात्मा चेतनदासजी के पास सारस्वत व्याकरण का अध्ययन कर संस्कृत के भी आप अच्छे ज्ञाता बन गये थे। नागोर की वीर भूमि में हमारे चरितनायक ने धर्मवीरता आदि के अपूर्व आदर्श पैदा किये। यहीं से आपका जीवन तपस्वी ही नहीं महातपस्वी रूप से आलोकित होने लगा।

१८

❀ गोढवाड की यात्रा ❀

दुष्कर्मोच्चाटनं तीर्था-टनं कल्याण—कारणम् ।
तीर्थं गत्वा तरन्त्येव-सन्तः संसार-सागरम् ॥

कल्याण के कारण भूत तीर्थ स्थानों में घूमने से पापकर्मों का नाश होता है। सन्त पुरुष तीर्थ में जाकर संसारसागर को ही पार करते हैं।

महातपस्वीजी ने अपने विद्या गुरु श्रीभगवान सागर जी महाराज के साथ नागोर से विहार कर फलोदी पार्श्वनाथ के दर्शन किये। मेडता में चौदह जिन मंदिरों के दर्शन किये एवं भव्यात्माओं को दर्शन का लाभ दिया। मेडते में कल्लू जोशी नाम के पंडित के साथ चर्चा में जैन दर्शन का पक्ष प्रतिपादन किया। पंडित जी ने कहा था कि जैनी ईश्वर को नहीं मानते हैं, अतः नास्तिक होते हैं। इस पर गुरुदेव की दया से प्रज्ञावान् महातपस्वी जी ने फरमाया—कौन कहता है जैनी ईश्वर को नहीं मानते? ये मंदिर जैन ईश्वर के स्वरूप का ही तो भान कराते हैं। यदि आप जगत के अकर्त्ता रूप से ईश्वर को मानने वाले जैनियों को नास्तिक कहते हैं। तो यह आपके पाण्डित्य की अपूर्णता है।

जगत् पुरुष—आत्मा और प्रकृति—जड इन दोनों के प्राकृतिक संयोग से बना है। हम ही हमारे संसार के रचयिता हैं। हमारा रचने वाला अगर कोई अलग ईश्वर है, तो उस ईश्वर का रचने वाला कोई दूसरा ईश्वर होना चाहिये। यहां इस दलील में अनवस्था दोष की उत्पत्ति होती है। परलोक को आत्मा—परमात्मा को न मानने वाले ही नास्तिक होते हैं। जैनी इन सबको मानते हैं। आप कैसे नास्तिकत्व का आरोप जैनियों पर लगाते हैं। आपकी ओजस्विनी वाणी को सुन कर पंडित कल्लूजी ने एक ज्योति के दर्शन किये। सिर झुका कर क्षमा चाही।

आपके दर्शन को पाकर मेड़ता का जैन संघ बडा प्रभावित हुआ। आप कोशाणा—पीपाड आदि में जिन—दर्शन करते हुए, धर्म का प्रचार करते हुए, कापरडा तीर्थ में पधारे—यहां जयतारण के भाना जी भंडारी का अपने गुरु खरतर गच्छाधिराज श्रीजिनचन्द्रसूरि जी के उपदेश से एक भीम काय चतुर्मुख उत्तुंग मंदिर श्री स्वयंभु पार्श्वनाथ स्वामी की चौमुखी प्रतिमा प्रतिष्ठित कराकर स्थापन किया हुआ है—के दर्शन किये। यहां के अधिष्ठायक श्री भैरुं जी महाराज बडे चमत्कारिक हैं। यहां से आप सोजत में—जाडण में जैन मंदिरों के दर्शन कर पाली पधारे।

पाली पुराणा शहर है। यहां श्रीनवलक्खा पार्श्वनाथ जी का बावनजिनालयोपशोभित बहुत बड़ा मंदिर है। शांतिनाथ भगवान का मंदिर भी अपनी शान का चमत्कारिक मंदिर है। इस प्रकार कई मंदिरों दादा-वाड़ियों से पाली निराली है। व्यापार की मंडी होने से वस्ती भी हरी भरी है। भावुकों के आग्रह से महातपस्वी-जी को साथ ले गुरुदेव ने एक मासकल्प किया। इस अवसर में वि० सं० १९४२ को माघ वदी ४ को गणाधीश्वर पूज्येश्वर सुखसागरजी महाराज साहब के स्वर्गवास के खेदजनक समाचार मिले। उस समय गुरु–विरह का भारी शोक हुआ। गुरुदेव श्री भगवान सागरजी महाराज को गणाधीश्वरजी के पद पर समुदाय ने मंजूर किया। आपने भी कर्त्तव्य पालन रुप धर्म को मानते हुए उस भार को सुचार रुप से वहन किया। बाद में पाली की भाखरी पर भगवान के दर्शन कर अपूर्व आत्म शांति का लाभ आपने प्राप्त किया। पाली से गुंदोज आदि में धर्म का प्रचार और प्रभु दर्शन करते हुए आप वरकाणा पधारे

वरकाणा गोढवाड का प्रधान तीर्थ है। यहां पद्मावती पार्श्वनाथ भगवान के अपूर्व दर्शन कर, आपने नाडोल में नेमीनाथ भगवान के दर्शन किये। वहीं पद्म प्रभु, शांतिनाथ–जीरावला–पार्श्वनाथ–भगवान के दर्शन किये। नाडोल में भव्यों की भाव भक्ति से आप चार

दिन विराजे सतसंग व्याख्यान हुए । वहां से आप नाडुलाई पधारे । यह नगर प्राचीन काल में समृद्ध था, पर अभी तो केवल ग्यारह मंदिर ही रह गये हैं । कुछ जैनियों के घर भी हैं । यहां भगवान श्रीऋषभदेव जी का मंदिर प्राचीन, एवं चमत्कारिक जन-श्रुति से पूर्ण है । कहते हैं किसी महात्मा ने योग बल से इसे उडा कर, दूसरे स्थान से यहां लाया है । योग की शक्ति अचिंत्य होती है । तीर्थ यात्रा में ऐसे दर्शन अध्यात्म योग की अभिवृद्धि के कारण बनते हैं । यहां पहाडी पर-जिसे गिरनारावतार भी कहते हैं-भगवान श्रीनेमिनाथ के दर्शन किये ।

नाडुलाई से घाणेराव में आपने-मूंछ के चिन्हवाले मूंछाले महावीर जी की यात्रा की । पहाड़ों के बीच में आये मंदिर की शांत व्यवस्था में महा-तपस्वी जी ने अपनी अवस्था को आत्मानुयोगी बना कर अधिकाधिक दृढ़ बनाई । आपने घाणेराव में एक मास कल्प किया । समदडी होते हुए आप ने राणकपुर के ऐतिहासिक तीर्थ को भेटा । धन्नाशाह पोरवाड की अमर कीर्ति इस मंदिर से जुडी हुई है । ९९ लाख रुपये इसकी रचना में खर्च हुए थे । यहां ७४ पाताल मंदिर हैं । उनमें केवल सात खुले हुए हैं-उनके दर्शन किये । इस प्रकार यात्रा करते हुए आप सिरोही पधारे । यहां के सुन्दर मंदिरों के दर्शन से

लाभ लेते हुए जनता को भी लाभ दिया। आपकी संयम प्रधान साधना से प्रभावित हो वहां के संघने आपको चतुर्मास के लिये जोरदार प्रार्थना की। आपने उसे मान्य फरमा कर वहीं—सिरोही में चतुर्मास किया।

१९

❀ सिरोही का चतुर्मास ❀

परोपकाराय वहन्ति नद्यः, परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकाराय सतां विभूतयः॥

परोपकार के लिये नदियां बहती हैं। परोपकार के लिये वृक्ष फलते हैं। परोपकार के लिये ही गायें दूध देती हैं। इसी तरह साधु पुरुषों की विभूति भी परोपकार-के लिये ही होती है।

राजपूताने में सिरोही का स्थान बडे गौरव का है। इसे गुजरात और राजस्थान को जोडने वाली कडी कह सकते हैं। यहां के पानी से बनी तलवारें मैदाने जंग में अपना पानी कमाल का दीखाती हैं। इसकी अंचल में रहने वाला आबु का पहाड हिमालय का बेटा माना जाता है। कहना चाहिये कि गोढवाड प्रान्त का सिरोही प्रधान केन्द्र है।

पूज्येश्वर गणाधीश्वर श्रीमान् भगवान सागर—सद्-

गुरुदेव की आज्ञा से आपने सिरोही में श्री उत्तराध्ययन को सुनाना शरु किया। हरिकेशीबल के अध्ययन का विषय चलता था। आपसे किसी ने पूछा क्या चाण्डाल भी जैन साधु हो सकता है ?। आपने फरमाया चाण्डाल कर्म को करता हुआ, कोई व्यक्ति जैन साधु तो क्या? श्रावक या सम्यग् दृष्टि भी नहीं बन सकता। परंतु संसार में जाती से भी कई लोग चण्डाल कहे जाते हैं वे-चारित्रावरणी कर्म का क्षयोपशम हो तो, सम्यग्-दृष्टि श्रावक ही नहीं साधु भी हो सकते हैं।

महातपस्वी जी ने फरमाया—कर्म प्रकृति से संसार में विचित्रता दिखाई देती है। उस कर्म-प्रकृति को कार्मण वर्गणा से परिणामों के द्वारा आत्मा आत्मसात् करता हुआ, भले बुरे रूप में भोगता है। कहा है—कोई भी किसी को सुख दुःख नहीं देता। अपने कर्म से ही जीव बंधता है, और छूटता है। हां, तो संस्कारों से बंधी कर्म की प्रकृति दो रूप से फल देती हैं। पहली जीव विपाकी जीव-आत्मा के परिणामों में फलाफल दिखाती है। तो दूसरी पुद्गल विपाकी—जीव के शरीर में फल दिखाती है। जीव विपाकी प्रकृति को हम इन्द्रियों से नहीं देख सकते हैं। ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय आदि कर्म-जीव विपाकी माने जाते हैं तो नाम कर्म आदि पुद्गल-विपाकी।

उदाहरण के तौर पर हमने मनुष्य शरीर नाम कर्म को बांधा है, यह दीखता है। वैसे तिर्यंच शरीर भी दीखता है। यह पुद्‌गल विपाकी प्रकृति जब तक हमारा शरीर है तब तक बराबर फल दिखाती रहेगी। यह नहीं कि एक ही जन्म में गाय-गधा और गधा गाय बन जाय। पर ज्ञानावरणीय प्रकृति के आवरण वाला अपण्डित, पुरुषार्थ-से उस आवरण को उसी शरीर में रहता हुआ भी हटा-कर बदल कर पंडित रूप बन जाता है। हां तो जो गोत्र कर्म है, वह जीव विपाकी है, और वह बदल सकता है। नीच गोत्र वाला, उँच गोत्र वाला बन सकता है। गाय का गधा बनना और नीच का उंच बनना इसमें बड़ा अन्तर है। इस अन्तर को कर्मग्रन्थ के पाठक भली भांति समझ सकते हैं।

इस का निष्कर्ष यह निकला कि गुरु कृपा से-कर्म के क्षयोपशम से साधु धर्म को पाने वाला म्लेच्छ चण्डाल आदि जाती का व्यक्ति भी अपने नीच गोत्र को साधुपना स्वीकारते ही परिणामों की विशुद्धि से उंच-गोत्र रूप से बना लेता है। यह जैन दर्शन का अटल सिद्धान्त है। इसी लिये भगवान ने फरमाया है—

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
कम्मुणा वइसो होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥

ब्राह्मण, कर्म-क्रिया से होता है। क्षत्रिय भी कर्म से होता है। वैश्य भी कर्म से होता है और चाण्डाल भी कर्म से ही होता है-न कि जन्म से-जाती से।

अच्छे कर्म वाला ही साधु बनता है। उस हालत में नीच गोत्र, उंच गोत्र बन जाता है। इस प्रकार की आपकी युक्ति और आगम प्रमाण संपन्न देशना को सुन कर गणाधीश्वर गुरुदेव और संघ बडा प्रसन्न हुआ।

सिरोही के चतुर्मास में आपसे प्रेरणा पाकर संघ ने ज्ञान वृद्धि के लिये पठन पाठन के साधनों की नींव डाली। ठीक ही तो है, परोपकारी महात्माओं की प्रेरणा भी परोपकार के लिये ही हुआ करती है। पूजा-प्रभावना स्वामीवात्सल्य आदि कार्य आपके चतुर्मास में खूब हुए, समय बडी शांति से व्यतीत हुआ। नागोर के रहनेवाले ओसवाल रेखावत गोत्रीय-सुनाम श्रावक ने स्त्री कुटुम्ब को छोड़कर आपके वैराग्य पूर्ण उपदेश से प्रभावित हो दीक्षा ग्रहण की। उन का नाम श्रीमान् सुमति सागर जी रखा गया जो बाद में उपाध्याय पद से विभूषित हुए। महा तपस्वी जी गुरुदेव श्री भगवान सागर जी महाराज के साथ आबु तीर्थ की यात्रा के लिये विहार कर गये।

२०

❀ आबु तीर्थ की यात्रा ❀

अर्बुदाचल-तीर्थ ये-योग-साधन-तत्पराः ।
आगच्छन्ति जना अत्र-ते गच्छन्ति परां गतिम् ॥

श्री आबुगिरि तीर्थ में योग साधना में तत्पर व्यक्ति जो कोई आते हैं । वे इस लोक में चार गतियों से परे परा-गति मोक्षावस्था को प्राप्त होते हैं ।

कवि संप्रदाय में आबुगिरी राज को हिमालय का पुत्र बतलाया है । यह राज स्थान की सीमा की रक्षा करने वाले जागरूक प्रहरी की भांति अविश्रांत रूप से पहेरा देता है । अपनी सुरम्य और समुन्नत शिखरावली से घमंडियों के घमंड को चूरमूर कर देता है । इसकी विकसित वनराजी संपन्न गुहाओं से मृगराजों की भयंकर गर्जना कायरों की काया का ढेर कर देती हैं । योग साधनावाले योगी और परम-योगी इस पर्वतराज की प्रत्यासत्ति से परमोच्च दशा को प्राप्त होते हैं । अनेक औषधि रस-मिश्रित गिरि निर्झरणों से निकले हुए कलकल-निनादी झरणे ध्यान की अखंडधारा के समान बहते रहते हैं ।

ऐसे इस आबुगिरिराज पर विक्रम की दशवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में विमलशाह मंत्री ने एवं वस्तुपाल तेजपाल ने करोडों रुपैयों के खर्च से सुमंजुल भव्य कला कौशल पूर्ण दिव्य देव मंदिरों का निर्माण करवा कर इस तीर्थ की विभूति में चार चांद लगा दिये हैं । आज भी

उनकी कीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त होती हुई, समुद्र पार के कला प्रेमियों को अपने दर्शन के लिये आकर्षित करती रहती है। इन्हीं दिव्य देव मन्दिरों की रक्षार्थ आपके दादा गुरु पूज्यपाद-अनेक सिद्धि संपन्न श्रीमान् ऋद्धि-सागरजी महाराज साहब ने अगंतुक अंग्रेजों से बूंट उतार-कर ही मंदिरों में प्रवेश करने को मजबूर किया था। मंदिरों के आस पास शिकार-छावनी रुकवा दी थी। कई नियम भी मंजूर करवाये थे। इसी आबुगिरिराज से प्रह्लादनपुर-पालनपुर की पवित्र सीमा सटी हुई है। यहीं से पालनपुर के पुण्य दर्शन भी हुआ करते हैं।

हमारे चरितनायक महातपस्वीजी अपने विद्या-गुरु गणाधीश्वर श्रीमान् भगवान सागरजी महाराज साहब की सेवा में इस आबू गिरिराज की यात्रार्थ पधारे। यहां रह कर आपने पिण्डस्थ पदस्थ रूपस्थ और रूपातीत ध्यान का अभ्यास किया। कई सिद्धियों का साक्षात्कार करके आपने अध्यात्म के असली रहस्य को जाना। आबु पर ही अचलगढ तीर्थ के दर्शन को जाते समय रास्ते में आपने सिंह को देखा। आपकी औजस्विनी मुखमुद्रा से प्रभावित हुआ शेर नत मस्तक हो चला गया। ज्ञान-ध्यान तप-संयम की एकता से क्या नहीं होता? सब कुछ सिद्ध होता है।

आबु गिरिराज की ही छाया में रहे हुए अजारी गांव में कुछ समय आपने विश्राम किया। एवं पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित देवी–सरस्वती के सिद्धपीठ का दर्शन किया। भगवती की ही कृपा से आपको पचास वर्ष की पकी हुई अवस्था में भी शास्त्रों के पाठ स्मरण हो जाते थे। व्याख्यान के समय आपके मुख में सरस्वती का निवास सा हो जाता था।

आपने अजारी से ब्राह्मणवाडा तीर्थ के दर्शन किये। नाणा में श्रीमहावीर प्रभु के दर्शन किये। यहां भगवान के चरणों पर गवालियों द्वारा खीर रांधने के उपसर्ग का दर्शन होता है। देणा में पिशाची उपसर्ग का दर्शन होता है। वहां भी आपने दर्शन किये। नांदिया में चण्डकौशिक सर्प के उपसर्ग के स्मारक चिह्न रूप मंदिरों के दर्शन किये। भगवान की उस पुण्यभूमि के दर्शन पाकर अपने आपको धन्य मानते हुए आप श्री सिद्धाचल तीर्थाधिराज की यात्रा को पधारे।

२१

★ सिद्धाचल तीर्थराज की यात्रा ★

सिद्धाचल पद हेतु—भवसागर तारणे महा-सेतुः।
जयतु जिनागम-पावन–भावनया सिद्धगिरिराजः॥

अनंत साधकों के सिद्ध और अचल पद का हेतु, भव सागर से तिराने वाला सेतु-पुन्ज स्वरूप, जिनेश्वर के आगमन की पवित्र भावना से सिद्धरूप-सिद्धाचल तीर्थाधिराज की जय हो।

हमारे चरितनायक महातपस्वीजी गणाधीश्वर श्रीमान् भगवान सागरजी सद्गुरुदेव के साथ फलोदी के श्रावक छोगमलजी आदि सत्संगी श्रावक संघ को लेकर सिद्धाचल तीर्थराज की यात्रा को पधारे। रास्ते में खराडी, पालनपुर पाटन, महेसाना, वीरमगाम, भोयणी आदि नगरों-तीर्थों में भी आपने दर्शन का लाभ लिया।

सिद्धाचल की सिद्ध भूमि को देखकर आपके रोम २ विकसित हो गये। जहां के अणु-परमाणु में अनंत साधकों की पवित्रता भरी है। वहां जाकर आपने अपने आपको पवित्र माना। गिरिराज पर चढ़ते हुए अपूर्व भावोल्लास हुआ। जीवन की सार्थकता को मानते हुए आपने तलहट्टी-खरतरवसही-छींपावसही-साकरवसही-मोतीवसही-विमलवसही आदि स्थानों के दर्शन किये। द्रव्यक्षेत्र काल और भाव की शुद्धि से साधक सिद्ध होते हैं। सिद्धाचल तीर्थराज क्षेत्र की दृष्टि से परम शुद्ध है। वहां आप जैसे संयमी महात्माओं का आत्म-द्रव्य अपने इस मुक्तभोगी-काल में शुद्ध भावों की श्रेणि पर क्यों न समा-

रूढ हो ? धन्य है, इस तीर्थ को और आप जैसे पवित्रात्मा यात्री को।

सिद्धाचल तीर्थराज परम पवित्र होते हुए भी वहां कुछ साधु साध्वियों की असंयम प्रधान प्रवृत्तियों से आपको कुछ खेद भी हुआ। पर आप देखादेखी करने की वृत्ति से परे रहकर, आत्म दर्शन में लगे रहे। पूज्येश्वर गणाधीश्वरजी की निश्राय में मुमुक्षु महानुभाव छोगमलजी आदि से आपकी आत्मविषयक विचारणा होती ही रहती थी। छोगमलजी ने आपसे पूछा भगवन्! सिद्धाचल तीर्थराज के लिये कहा जाता है-"पापी अभवी नजरे न देखे"-का क्या अर्थ है ?

आपने फरमाया। पुद्गल-परावर्त को करते हुए सभी जीवात्मा सभी स्थानों को स्पर्श करते हैं। चक्षुरिंद्रिय की प्राप्ति होने पर देखते भी हैं। परन्तु पापी अभवी ऐसे स्थानों में स्पर्श करते हुए देखते हुए भी विवेक चक्षु से रहित होने से नहीं देखते। पहाड को देखना पत्थर को देखना मात्र नहीं है। इसमें अनन्त आत्माओं की साधना भरी पड़ी है। उसे देखना भाविक आत्माओं को ही प्राप्त होता है। साधु के दर्शन-जैसे शरीर मात्र से नहीं माने जाते हैं, वैसे ही यहां भी निगमन करना चाहिये।

व्यवहार नयकी अपेक्षा से अपन देवगुरु की भक्ति करते हैं, वह निश्चय नय से आत्मा की भक्ति रूप ही माननी चाहिये। निमित्तानुयायीउपादान ठीक होने से सभी कुछ ठीक होता है। देव-गुरु हमारी आत्मा के लिये निमित्त कारण रूप हैं। कारण पद में कर्तृत्व का आरोप करके ही हम प्रार्थना करते हैं। मोक्ष का उपादान तो हमारा आत्मा ही है। देवगुरु की उपासना से आत्मा में देवत्व और गुरुत्व जो छिपा पड़ा है, वह प्रकट हो जाता है। उसे प्रकट करने के लिये ही हमारा यह सारा अनुष्ठान हो रहा है।

महा तपस्वी जी की इस प्रकार की आगमानुकूल आत्म-भाव-प्रधान व्याख्याओं से श्रावक जी छोगमल जी आदि बडे प्रसन्न हुए। उनको ऐसा सत्संग सोने में सुगंधी भरने के जैसा प्रतीत हुआ। वे तीर्थराज के दर्शन से ऐसे निस्पृही सद्गुरुओं के सत्संग से, और आत्मानुयोगी चिंतन से अपने जीवन को धन्य मानने लगे।

पूज्येश्वर गणाधीश्वर गुरुदेव श्रीमान् भगवान सागर जी महाराज साहब महा तपस्वी श्री छगन सागर जी महाराज व श्रावक जी आदि भक्त मंडली के साथ काठियावाड गुजरात आदि के तीर्थों की यात्रा करते हुए वापस-मारवाड पधारे। मारवाड के धार्मिक संस्कारों की

सुरक्षा का भार भी प्रायः आपके साधु-साध्वियों का समुदाय ही उठाता है । गुजराती साधुओं के जैसे चाय और चांवलों के बंधन में आप बंधे हुए नहीं होने से, आपको मारवाड का विहार विकट होते हुए भी कष्ट दायक मालूम नहीं होता था ।

२२

❀ बीकानेर चतुर्मास ❀

दया-दान-प्रधानानां-गृहस्थानां विशेषतः ।
साधु-सत्संग-योगेन -- ध्रुवं धर्मोऽभिवर्द्धते ॥

दुखियों पर अनुकम्पा करके उनके दुःख को मिटाने के लिये यथाशक्ति दान करने वाले मार्गानुसारी गृहस्थों का धर्म संयमी-साधुओं के सत्संग प्रसंग से निश्चित रूप से बढ़ता है ।

हमारे चरित-नायक महा-तपस्वी जी गणाधीश्वर गुरुदेव के साथ सिरोही शिवगंज पाली जोधपुर तींवरी लोहावट आदि स्थानों में समुदाय के साधु साध्वियों को संगठित करते हुए, श्रावकों में धर्म का प्रचार करते हुए फलोदी पधारे । यहां स्वर्गीय गणाधीश्वर श्रीमान सुख-सागर जी महाराज साहब की स्वर्ग भूमि के दर्शन किये एवं भाव प्रेरणा प्राप्त की । गुरुदेव श्री स्थान सागर जी

महाराज के दर्शन किये। उनकी वृद्धावस्था थी। अपने शिष्य की शासन सेवा की अद्भुत शक्ति को देख कर वे बडे प्रसन्न हुए। आपका दीर्घ-संयम पर्याय बडा सुन्दर रहा। संयम की साधना करते हुए श्री स्थान सागरजी महाराज का भी स्वर्गवास हो गया। "नानुशोच्या ही पण्डिताः" पण्डित मरण मरने वालों के लिये शोक नहीं करना चाहिये। इस लिये गुरुदेव की आज्ञा से अठाहि महोत्सव श्रावक संघने बड़े ठाट के साथ किया। महातपस्वीजी ने बड़ी वैराग्य भाव वाली देशना दी। अमरत्व का भान करते, और कराते हुए संयम-मार्ग को प्रशस्त बनाया।

सिद्धाचल-यात्रा के समय से ही बीकानेरी संघ के मुखिया श्रावकों की प्रार्थना बीकानेरमें चतुर्मास करने के लिये थी। समय २ पर उसी के लिये स्मृति पत्र एवं भक्ति भरे भावुकों की प्रार्थना बढने लगी। गृहस्थों के लिये गरीबों के प्रति अनुकंपा से किया गया दान पाप-रूप बताने वाले, प्रभु पूजा के निषेधक तेरह पंथी संप्रदाय से होने वाले खतरे की सूचना भी मिलने लगी। ऐसी हालत में फलोदी के संघ की पूर्ण प्रार्थना होने पर भी आप ने सं० १९४४ का चातुर्मास बीकानेर में किया।

बीकानेर के संघ ने-आपका अभूतपूर्व स्वागत

किया। आपके उपदेश होने लगे। उपदेश के प्रसंग में भगवान श्री नेमीनाथ के ब्याह का संबंध चल रहा था ब्याह में मांसाहारियों के लिये बाडे में भरे हुए पशुओं को देख कर दयालु भगवान श्री नेमिनाथ स्वामी ने अनुकम्पा से ब्याह से विरत हो कर, पशुओं की दया की इस पर एक श्रावक ने पूछा—

क्या यह दया धर्म रूप थी ? असंयमी अव्रती पशुओं को बचाने से उनके द्वारा आचरित पापों का भागी बचाने वाला नहीं होगा क्या ? यदि पशुओं को छुडाने से ही धर्म हो जाता है, तो भगवान साधु क्यों बनते हैं ? हमेशा इसी प्रकार पशु छुडाने का धर्म ही क्यों नहीं करते रहे ?

महा तपस्वी जी ने बडी मधुरता से शांत भाव से फ़रमाया देवानुप्रिय ! वह दया, धर्म रूप नहीं थी तो, क्या पाप रूप थी ? दया अनुकंपा भी कहीं पाप रूप हो सकती है ? क्या तुमने सम्यक्त्व के लक्षण रूप अनुकंपा को नहीं सुनी ? महानुभाव ! अनुकम्पा करने वाला व्यक्ति पशुओं—प्राणियों पर अनुकम्पा करके उनका ही उपकार नहीं करता। अपने कोमल आत्म संस्कारों को ताजा रख कर एक प्रकार से अपना ही उपकार करता है। कोमल आत्म भूमि में ही भाव धर्म के बीज अच्छी

तरह अंकुरित होते हैं। चट्टान पर पडा हुआ बीज मिट्टी की कोमलता के अभाव में ऊगता हुआ कभी देखा है क्या ? इसलिये वह दया भी कारण रूप से धर्म ही थी और होती है।

असंयमियों द्वारा आचरित पाप बचाने वालों को पाप के परिणाम न होने से-नहीं लगते। अगर यों पाप लगने लगे तो ऐसे पापों से छुटकारा हो ही नहीं सकता सोचिये, आपके घर की रोटी को खाकर, पेट दूख कर साधु मर जाय, तो यह साधु मारने का पाप आपको होगा क्या ? साधु मर कर कर्मानुसार देव-लोकादि-गति में गया, पापों का असंयम का आचरण करेगा, अरे यहां भी कर्मोदय से कल यदि साधु-पणा छोड कर पाप करेगा, तो आपको उसका पाप-भोगना पडेगा क्या ? आपको मानना पडेगा कि हमारे परिणाम मारने के नहीं थे, अतः मारने का पाप नहीं लगेगा। साथ ही देवादि गति में तथा यहां असंयम रूप पापों के आचरण में हमारी अनुमति है ही नहीं। अतः हमें पाप नहीं लगेगा। तो यही न्याय उन असंयमी प्राणियों की अनुकम्पा के साथ लगाइये। पाप के करने और अनुमोदन में परिणामों से ही पाप लगता है। बिना परिणाम के पाप लग ही नहीं सकता।

भगवान ने पशुओं के छुडाने में धर्म माना ही था। उन्होंने उसी धर्म को छह जीव निकाय की स्वयं रक्षा करके उपदेशों द्वारा दूसरों से कराकर के और जीवों की हिंसा न करना-अच्छा है, ऐसा अनुमोदन करके बढाया, परा काष्ठा में पहुंचाया है, न कि घटाया। आप कहते क्या हैं? भगवान साधु क्यों बनते हैं? देवानुप्रिय! भगवान साधु इसीलिये बनते हैं, कि मनसा वाचा और कर्मणा जीवों की रक्षा हो। एवं वही रक्षा रूप धर्म परा काष्ठा में पहुंच कर, हमारे पूर्ण कल्याण का कर्त्ता बने।

आपके इस-सचोट उपदेश को सुन कर कई भव्यात्माओं की भ्रान्त धारणायें मिट गई। आपके व्याख्यान हमेशां वस्तु-प्रतिपादक युक्ति-प्रमाण पुरस्सर हुआ करते थे। यहां बीकानेर में भी आपने मासखमण की दिव्य-तपस्या की। संघ में अपूर्व उत्साह, और आनन्द रहा।

२३

❀ साध्वी-शिक्षा-प्रचार ❀

बाहुबलि-हरिभद्र-प्रमुखाः पुण्य-मूर्त्तयः।
साध्वी सद्बोध योगेन-प्राप्ता लोके परं पदम्॥

बाहुबली जैसे लोकोत्तर पुरुष, और हरिभद्रसूरि

जैसे समर्थ साहित्यकार ब्राह्मी सुन्दरी तथा याकिनी महत्तरा जैसी समर्थ साध्वियों के सद्बोध से, परम-उत्कृष्ट पद के अधिकारी हुए हैं। साधारण लोगों के लिये तो कहना ही क्या ?

भगवान श्रीमहावीर देव के शासन में चतुर्विध संघ रूप तीर्थ की महत्ता जैसी पुरुषों को प्राप्त है। वैसी ही स्त्रियों को भी प्राप्त है। चारों मोक्ष के अधिकारी हैं। चारों ही गुण-रत्नों की खाण रूप माने जाते हैं। पुरुषों को साधु और श्रावक पद प्राप्त होता है। तो स्त्रियों को साध्वी और श्राविका पद प्राप्त होता है। साधु और साध्वी पंच-महाव्रतधारी, पूर्ण-त्याग-वैराग्य के धारक और समर्थक होते हैं। श्रावक और श्राविका देश-मर्यादा से त्याग वैराग्य के धारक होते हैं, और भावना से पूर्णतया समर्थक होते हैं। कुछ अपवाद को छोडकर जो अधिकार साधु को है, वही अधिकार साध्वी को भी है। जैसे साधु सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र का पालक और प्रचारक होता है, ठीक वैसे ही साध्वी भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की पालिका और प्रचारिका होती है।

प्रचारक में चारित्र बल के साथ जितनी-उत्कृष्ट कोटि का ज्ञान होगा, उतनी ही उत्कृष्ट कोटि का प्रचार भी होगा। इस लिये साधु-साध्वी में साधुत्व के साथ २

ज्ञान का विकास उन २ उपायों से करना कराना आवश्यक है। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, हमारे चरित्रनायक श्रीमान् छगनसागरजी महाराज ने पूज्येश्वर गणाधीश्वरजी महाराज की आज्ञा से साधुओं के जैसे ही साध्वियों में भी जैन आगमों–प्रकरणों के सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ २ व्याकरण—न्याय—काव्य—कोश—अलंकार आदि लौकिक ग्रन्थों को पढने-पढाने की प्रवृत्ति बढा दी। उसी का परिणाम है, कि आज मारवाड़ में साधु कम होने पर भी ये परम विदुषी साध्वियां श्री भगवान महावीर देव के शासन की अपूर्व सेवा कर रही हैं।

पूज्येश्वर गणाधीश्वर श्रीमान् सुखसागरजी महाराज के समुदाय में वर्त्तमान साध्वियों के तीन समुदाय हैं। १—प्रवर्तिनी श्रीमती भावश्रीजी का समुदाय। २—प्रवर्तिनी श्रीमती पुण्य श्री जी का समुदाय। ३—प्रवर्तिनी श्रीमती शिवश्रीजी का समुदाय। साध्वियों के इन तीनों समुदायों में शिष्या–प्रशिष्याओं का अच्छा–खासा विस्तार है। ज्ञान-ध्यान-तप-त्याग की दृष्टि से तीनों ही साध्वी समुदाय संपन्न, और जनता में परम श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं।

तीनों ही साध्वी–समुदाय की साध्वियां संपन्न घराने की हैं। उनमें कई आबाल ब्रह्मचारिणी हैं। कई पति-आदि के सुखभोगों को त्याग करने वाली हैं। कई विद्वत्ता

में अच्छे २ विद्वानों को भी जवाब देने योग्य हैं। कई हजारों की सभा में निर्भय भाव से जैन शासन के झण्डे की शान—बढाने वाली हैं। बनारस की पाणिनीय व्याकरण संबंधी कठिन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने वाली साध्वियाँ भी मौजूद हैं। मारवाड़-मेवाड़-मालवा-गुजरात काठियावाड़-कच्छ महाराष्ट्र यू० पी० सी० पी० के दूर २ के प्रान्तों में भी प्रचार की दृष्टि से बिहार करने वाली ये साध्वियां हैं।

गणाधीश्वर श्रीमान् भगवान सागरजी महाराज साहब के पुनीत संयम–साम्राज्य की भूमि में महातपस्वी जी जैसे चतुर बागवान के द्वारा बोये हुए, साध्वी-शिक्षा रूप सहकार वृक्ष के सत्य शिव और सुन्दर फल जैन-जैनतर जनता के सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रमय जीवन के पोषण में अनुपम प्रमाणित हो रहे हैं। धन्य हो उन गणाधीश्वर गुरुदेव को। धन्य हो उन महातपस्वीजी को। धन्य है उन साध्वी समुदायों को, जो भगवान महावीर देव के शासन की प्रशस्त प्रभावना कर रहे हैं।

जब कि दूसरे गच्छ के साधु लोग साध्वी व्याख्यान के घोर विरोधी थे। उस जमाने में आपने साध्वियों की व्याख्यान–विधि में चमत्कारिक योग्यता संपादित करवा कर, उन्हीं साधु लोगों के सुदृढ गढ पाटण, अहमदाबाद

सुरत, बंबई जैसे क्षेत्रों में साध्वी-व्याख्यान करवाये, और यशः सम्पादित करते हुए साध्वी व्याख्यान की प्रथा को प्रशस्त की। उसी का परिणाम है, कि उस गच्छकी साध्वियों में भी आज व्याख्यान देने योग्य बनती जारही हैं। अधिक क्या वे विरोधी साधु भी साध्वी व्याख्यान के समर्थक बन गये हैं। क्यों न हों, जो विधि आगमानुकूल है। जिससे शासन की प्रभावना होती है। उस विधि का कौन शासन हितैषी साधु साथ न देगा ? यदि इस हालत में भी कोई असहिष्णु-वृत्ति वाले साधु 'पुरुषों की सभा में साध्वी व्याख्यान नहीं दे सकती'-का प्रतिपादन करते हैं तो उनके विचार रद्दी की टोकरी के हवाले होते ही रहते हैं।

हमारे चरितनायक ने इस चिरस्थाई कलापूर्ण सजीव-कृती का विकाश करके मारवाड़ में प्रभु पूजा के विरोधियों से एवं दयादान में पाप बताने वाले पंथ से जैन संघ की रक्षा की है। इस बात का कृतज्ञ लोक बड़े आदर के साथ, स्मरण और अनुभव करते हैं।

२४

❂ फलोदी का चतुर्मास ❂

नास्ति विद्या समं चक्षु-र्नास्ति सत्य-समं तपः।
नास्ति राग-समं दुःखं-नास्ति त्याग-समं सुखम्॥

संसार में विद्या के समान कोई आंखें नहीं हैं। सत्य

समान कोई तप नहीं है। राग के समान कोई दुःख नहीं है। इसी प्रकार त्याग के समान कोई सुख भी नहीं है।

हमारे चरितनायक महातपस्वीजी महाराज श्री गणाधीश्वर गुरुदेव के साथ बीकानेर का चतुर्मास कर श्री नाल दादाजी के दर्शनार्थ पधारे। वहां से झज्झू आदि क्षेत्रों में धर्म का प्रचार करते गिराछर बाप आदि क्षेत्रों को पवित्र करते हुए, आप अपनी जन्म भूमि-फलोदी में पधारे। दीक्षा लेने के बाद से चतुर्मास कराने की वारंवार की प्रार्थना को स्थानीय जैन संघ ने सामुहिक आग्रह के के साथ बडी दृढता से करनी शुरू की। इसका परिणाम यह हुआ, कि वि० सं० १९८५ का चातुर्मास आपने फलोदी में करना मन्जूर फरमाया।

इस चतुर्मास में प्रातः व्याख्यान होता था। दूपहरी में साधु-साध्वी सूत्र लेख लिखना सीखते थे। उस जमाने के लिखे हुए सूत्र-लोहावट के मेरे भण्डार में सुरक्षित हैं। रेखचन्दजी कोचर छोगमलजी झाबक मूलचन्दजी निमाणी रेखचन्दजी गुलेछा आदि लब्धार्थ-गृहीतार्थ-बहुश्रुत श्रावक लोग एवं श्रीमती शिवश्रीजी विवेकश्रीजी कनकश्रीजी रत्नश्रीजी लाभश्रीजी आदि विदुषी साध्वी लोग श्रीगणाधीश्वरजी की अध्यक्षता में श्री महा तपस्वीजी के साथ द्रव्यानुयोग की चर्चा चलाते थे।

आपकी सुन्दर व्याख्या शैली इतनी हृदयंगम हुआ करती थी, कि बचाभी ध्यान से सुने, तो समझ जाता था। विषय जैन दर्शन के मान्य छह द्रव्यों का चल रहा था। आकाश जीव पुद्गल और काल इन चार द्रव्यों को तो करीब २ सभी आस्तिक दर्शन वाले मानते हैं। परन्तु धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय नामके दो द्रव्यों को दूसरे दर्शन वाले नहीं मानते।

जैन दर्शन में—'चलण सहावोधम्मो, थिर संठाणो अहम्मोय'—इस प्रकार के सूत्र द्वारा उन दोनों द्रव्यों का लक्षण सूचित किया गया है कि— १–गतिपरिणत जीव, और पुद्गल, इन दो द्रव्यों को गति में सहायक धर्मास्किाय नाम का द्रव्य है। जैसे गति परिणत मछली के लिये गति सहायक जल। इसी तरह— २–अधर्मास्ति-काय, स्थिति परिणत जीव पुद्गलों की स्थिति में सहायता देने वाला होता है। जैसे ग्रीष्म ऋतु में बैठने की इच्छा वाले राहगीर के लिये स्थिति सहायक पेड की छाया।

इस उदाहरण को सुनकर विदुषी साध्वी श्रीमती विवेक श्रीजी ने महातपस्वीजी से विनय पूर्वक प्रश्न किया कि भगवन्! जल और पेड की छाया, ये दोनों धर्मास्ति-काय अधर्मास्तिकाय हैं क्या?। मछली और राहगीर पुद्गल से बने शरीर को धारण करने वाले जीव हैं। अर्थात् जीव–पुद्गल दोनों है। गतिपरिणत को जल ने गति दी

एवं स्थिति परिणत को पेड की छाया ने स्थिति प्रदान की। इस हालत में दोनों द्रव्यों के लक्षण तो यहीं घटित हो गये। अलग द्रव्य की कल्पना गौरव वाली हो गई कृपया स्पष्टीकरण फरमावें। बड़ी दया होगी।

गुरुदेव साध्वीजी के इस विवेक पूर्ण प्रश्न को सुनकर बडे प्रसन्न हो गये। उनने फरमाया। जल और छाया तो दृष्टान्त मात्र हैं। जोकि समझाने के लिये स्थूल रूप से दिये गये हैं। वस्तुतः मछली की गति में—धर्मास्तिकाय ही, और राहगीर की स्थिति में— अधर्मास्तिकाय ही,—क्रमशः गति स्थिति प्रदान करते हैं। इसी लिये वे दोनों द्रव्य जल और छाया से जूदे हैं। इस उदाहरण से जो लक्षण की अतिव्याप्ति दिखती है, वह दिखावट मात्र है। जल और छाया के एक देशी दृष्टान्त हैं। जो दार्ष्टान्तिक विषय को समझाने के लिये ही प्रयुक्त किये गये हैं। इस लिये यहां लक्ष्य लक्षण में गौरव नहीं होगा। जैसे किसी के धैर्य को समझाने के लिये मेरु का उदाहरण दिया जाता है। धैर्य कोई मेरु के जैसा—स्थूल पदार्थ नहीं है। केवल उपमा-उपमेय को समझाने के लिये एक वचन व्यवस्था मात्र है।

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ये स्वतंत्र द्रव्य हैं। इनसे ही लोक अलोक की व्यवस्था होती है। जीव-

और पुद्गल अलोक में इसी लिये नहीं जाते, नहीं ठहरते हैं कि वहां वे दोनों द्रव्य नहीं हैं। उर्ध्व-गति परिणत सिद्धों की आत्मा लोकान्त से आगे अलोक में नहीं जाती है। जल-जमीन-हवा-इच्छा-शरीर सबसे निरपेक्ष रहने वाले सिद्धों का लोकान्त तक ही जाना, और ठहरना शास्त्र संमत है। अतएव किसी भी नाम से कहो वे दोनों द्रव्यों का होना शास्त्र संमत और वह युक्ति संगत भी है।

गुरुदेव की इस व्याख्या से वे सभी सत्संगी बड़े प्रसन्न हुए। इस प्रकार तत्त्व विचार में ही सफलता के साथ चौमासे के दिन भी पूर्ण गये। आपके उपदेश से कई लोग बारह व्रत रूप देश-त्याग-देश विरति श्रावक धर्म को धारण करने वाले हुए।

२५

❁ बारह व्रत—विचार ❁

गार्हस्थ्ये ऽपि सता मत्र-मर्यादा-व्रत पालनम्।
गुणस्थान-क्रमारोह - कारणं परमं मतम्॥

संसार के गृहस्थ जीवन में भी मर्यादा पूर्वक व्रतों का पालन करना, उत्तरोत्तर गुण स्थानों की सीढ़ी पर चढ़ने में परम कारण माना गया है।

फलोदी के चतुर्मास में पूज्येश्वर गणाधीश्वर श्रीमान् भगवान सागरजी गुरुदेव की आज्ञा से हमारे चरित नायक

महातपस्वीजी ने बाह्य और आभ्यंतर भेद भिन्न तपस्या को करते हुए व्याख्यान में त्याग धर्म की व्याख्या विशेष रूप से की।

त्याग करनेवाला सुखी और राग करने वाला— दुःखी होता है। दुःख नहीं चाहते हुए भी जीव दुःख के कारणभूत राग को नहीं छोडता। इसी लिये दुःखी होता रहता है।— भर्तृहरि ने कहा है—'भोगे रोग भयम्'— भोगों में रोग का यावत् मरण का भी भय बना रहता है। भोग से रोग होते ही हैं, यावत् मरण भी। इस भय से छुटकारा कैसे हो? तो वही कहते हैं—'वैराग्यमेवाभयम्' वैराग्य से ही आत्मा अभय होता है। अंतराय कर्म के उदय से कई बार हम भोग नहीं भोग सकते हैं। वह अभय भाव को पैदा नहीं—करता। उल्टा उसमें एक प्रकार से अतृप्ति की हाय हाय—संताप पैदा होती है। इच्छापूर्वक विवेक सहित भोगों को समझकर न भोगना, अवश्य लाभ दायक हुआ है, होता है, और होगा। इस लिये दुःख से बचना और सुख को पाना हो तो सम्यक्त्व पूर्वक त्याग धर्म को स्वीकार करना चाहिये। अगर पूर्णतया भोग— त्याग करने रूप चारित्र को कोई नहीं स्वीकार सकते, तो उन्हें देश से थोडा भी त्याग करने की कोशीश करनी चाहिये थोडा—मर्यादा में त्याग करने वाले गृहस्थ—श्रावक कहे जाते हैं। श्रावक धर्म में शास्त्रकारों ने मोटे रूप से बारह व्रत बताये हैं।

सम्यक्त्व—राग द्वेष रहित, आत्मा की अनंत शक्ति से संपन्न, सारे संसार के त्रैकालिक भावों को जानने की क्षमता-वाले-अरिहंत, और ज्योति स्वरूप-सिद्धों को देव रूप मानना। ज्ञानाचार-दर्शनाचार-चारित्राचार-तपाचार और वीर्याचार रूप पांच आचारों को पालने वाले, स्वाध्याय में रत रहने वाले, निष्पाप साधना करने वाले पूर्ण-त्यागी-आचार्य-उपाध्याय और साधुओं को गुरुरूप मानना। जीवाजीवादिक नव पदार्थों का गुरुगम से बोधकर कर्त्तव्य को करने रूप और अकर्त्तव्य को त्याग ने रूप वीतराग की आज्ञा के पालन रूप धर्म को अच्छा मानना। इसको सम्यक्त्व कहते हैं। उसे श्रद्धा से पैदा करना चाहिये। बाद बारह व्रतों का पालन करना चाहिये।

१—स्थूल हिंसा का त्याग—चलते फिरते-त्रस जीवों को बिना कारण और बिना अपराध न मारने का नियम, यह पहला व्रत है। इसमें—सूक्ष्म जीवों की दया भावना-विवेक पूर्वक रखनी चाहिये।

२—स्थूल झूंठ का त्याग—जिससे आत्मा मलीन हो। दूसरे को तकलीफ हो। राज से जिसका दंड प्राप्त हो। जिसकी लोक में भारी निन्दा हो। ऐसा कन्या संबंधी पशु संबंधी और भूमि संबंधी मोटा झूंठ नहीं बोलना चाहिये। बोलते समय सूक्ष्मतया भी झूंठ के त्याग की भावना रखनी चाहिये।

३-स्थूल चोरी का त्याग—विना दिये जिसके लेने से दूसरे को कष्ट हो। राज से जिसका दंड हो। लोक में जिससे निंदा हो उस को स्थूल चोरी कहते हैं। उसे नहीं करनी चाहिये, और विना दिये सूक्ष्म वस्तु को भी न लेने की भावना रखनी चाहिये।

४-स्वदार संतोष—स्वस्त्री के साथ भी अनासक्ति-पूर्वक संबंध करना चाहिये। परस्त्री का एवं वेश्या का सर्वथा त्याग होना चाहिये। इसी तरह से स्त्री को पर पुरुष-का सर्वथा त्याग होना चाहिये।

५-परिग्रह परिमाण—धन धान्य क्षेत्र वास्तु-(दुकान-मकान) आदि को इच्छापूर्वक बढाना-परिग्रह कहा जाता है। जीवन की-कुटुम्ब की आवश्यकता से अधिक परिग्रह का परिमाण निश्चित कर लेना चाहिये।

६-दिक्परिमाण—गमनागमन के क्षेत्र की-दशों दिशाओं की अवधि का परिमाण करना चाहिये।

७-भोगोपभोग परिमाण—जो वस्तु एकवार भोग में आवे वह भोग और वारवार भोग में आवे सो उपभोग। इन भोग और उपभोग की वस्तुओं का परिमाण करना चाहिये।

८—अनर्थ दंड त्याग—अपने लिये व कुटुम्ब के लिये जो कार्य किया जाता है वह अर्थ रूप है। उससे

पैदा होने वाला दंड अर्थ-दंड है। परोपकार की भावना-को छोडकर यों ही बेमतलब पाप करना अनर्थ-दंड कहा जाता है। उस का त्याग करना चाहिये।

९—सामायिक—पाप व्यापारों का त्याग कर ४८ मिनीट तक आत्मध्यान में व स्वाध्याय में लगे रहते,—जिस-समभाव से आय-ज्ञानादि गुणों का लाभ होता है—उसे सामायिक कहा जाता है। इसे प्रतिदिन या परिमाण से करना चाहिये।

१०—देशावकाशिक—दशों दिशाओं के लम्बे परिमाण का परिमित काल के लिए संक्षेप कर, विधिपूर्वक पाप व्यापार को छोडकर सामायिक में रहना। इस प्रकार देशावकाशिक करना चाहिए।

११—पौपधोपवास—धर्म का पोषण करने वाली उपवासपूर्वक पर्व दिनों में चार प्रहर या आठ प्रहर की विधिपूर्वक क्रिया को पौपध कहते हैं। इस प्रकार पौपध का परिमाण करना चाहिये।

१२—अतिथि संविभाग—तिथि-वार को लक्ष्य कर न आने वाले साधु-अतिथि होते हैं। उनका संविभाग आहारादि देकर सत्कार करना। इस प्रकार के अतिथि संविभाग को पौपधोपवास पूर्वक एवं समय पर हमेशा करना चाहिये।

इन बारह व्रतों को लेनेवाले श्रावक और श्राविका

पांचवें गुणस्थान पर आरूढ होते हैं। महातपस्वीजी महाराज के सदुपदेश से कई नर नारियों ने गृहस्थ धर्म के बारह व्रतों को स्वीकार किया। पूजा-प्रभावना-समारोह हुए। इस प्रकार फलोदी का चतुर्मास बडे सुन्दर परिणाम-वाला हुआ।

२६

◎ जेसलमेर आदि तीर्थों की यात्रा ◎

तीर्यते येन तत्तीर्थं—सेवनीयं सदा बुधैः।
यन्मनो वाक्काय-शुद्धया-ऽऽत्मनो वै तीर्थरूपता॥

जिसके द्वारा तिरा जाय उसे तीर्थ कहते हैं। पण्डित पुरुषों को सदा तीर्थ की सेवा करनी चाहिये। तीर्थ की सेवा से मन वचन और काया की शुद्धि होती है। उस से आत्मा की तीर्थरूपता प्रकट होती है।

राजस्थान की पश्चिमी सीमा में विस्तृतरूप से फैला हुआ जेसलमेर का प्रदेश है। भाटी राजपूतों ने इसे आ-बाद किया था। जब तक सिंध के मीठे महरबान से निकला हुआ हकडा जेसलमेर प्रदेश में बहता रहा, तब तक वह प्रदेश समृद्ध और संपन्न बना रहा। काल क्रम से रेगिस्तान की रेती से हकडे का प्रवाह बंद हो गया और उस प्रदेश की शोभा भी कृश होती चली गई।

आज भी जेसलमेर के पूर्वनिवासी राजपूताना पंजाब, यूपी, सीपी—आदि में भरे पडे हैं।

मुसलमानी बादसाहत के जमाने में देश की स्थिति अरक्षित सी हो गई थी। मंदिर गिराये जाते थे। ज्ञान भंडारों की अमूल्य ज्ञान-निधि गरम पानी करने के लिये काम में ली जाने लगी थी। उस समय के समयज्ञ जैनाचार्य श्री जिनभद्रसूरिजीने अधिक सुरक्षित समझ कर पाटण आदि स्थानों से ताड पत्र पर लिखित प्राचीन साहित्य को जेसलमेर में लाकर रखा था। वह ज्ञान-भंडार आज भी अपनी पूर्व कहानी को मूक भाव से कह रहा है, और कह रहा है वर्तमान के अयोग्य अधिकारियों के कारण होती हुई अपनी दयनीय दुर्दशा को भी।

प्राचीन इतिहास के प्रामाणिक साधन आज भी जेसलमेर में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। संक्रांति काल में इन का सदुपयोग होगा ही। जैन आचार्यों ने इस-जेसलमेर को तीर्थरूप माना है और गाया है—

जेसलमेर जुहारिये दुःखवारियें रे।
अरिहंत बिंब अनेक। तीरथ ते नमूं रे॥

इस प्रकार के प्रसिद्ध और पुनीत जेसलमेर तीर्थ की यात्रा के लिये हमारे चरितनायक श्री महातपस्वीजी महाराज ने गणाधीश्वर गुरुदेव के साथ फलोदी चतुर्मास के

बाद विहार किया। सेठ फूलचंदजी गोलेछा आदि धर्म-प्रेमी श्रावक श्राविकाओं का संघ भी आपके सत्संग का लाभ लेने के लिये साथ था।

पोकरण में जिनमंदिरों के एवं दादावाडी के दर्शन किये। स्थानीय संघ के ओसवालों और माहेश्वरियों ने जो कि लौंका-गच्छ के प्रभाविक गुरु की प्रेरणा से जैन धर्म को मानते थे। उन्होंने यात्री संघ का भव्य स्वागत किया। वहां से क्रमशः लाटी आदि स्थानों में रुकते हुए चारित्रनायक का जेसलमेर पधारना हुआ। तब स्थानीय जैन संघ ने आपके स्वागत की विशाल तैयारी की। शहर के एवं किलेपर कला पूर्ण परम शान्ति के धाम श्री-जिन-मंदिरों के दर्शन किये। ज्ञान-भंडार का अवलोकन किया।

आप की प्रभाविकता एवं विद्वत्ता और साधुता के सर्वोच्च गुणों की तारीफ सुन कर वहां के महारावल जी-ने आप के दर्शन किये। आत्मा और परमात्मा संबंधी ज्ञान गोष्ठी हुई। महारावलजी बडे प्रसन्न हुए। आपके जैसे जंगमतीर्थों के दर्शन से हमारी आत्मा-नगरी-और प्रजा धन्य है, ऐसे हार्दिक अभिनंदन के साथ गणाधीश्वर गुरुदेव को एवं महातपस्वीजी को जेसलमेर में विराजने के लिये प्रार्थना की। गुरुदेव ने भी उचित उपदेश देकर

महारावलजी और उनके राज्याधिकारी पुरुषों को धर्म-लाभ दिया।

जेसलमेर से अमरसागर के आपने दर्शन किये। यहां सेठों के सुन्दर मन्दिर में भगवान के दर्शन किये। महातपस्वीजी को यह स्थान बडा पसंद आया। प्रकृति ने यहां अपना शृंगार सा कर रखा था। तालाब, बगीचे, बावडियां, आस पास पहाडी-इलाका, विमानोपम-देव-मंदिर एकान्त स्थान सभी देखने योग्य थे। अमर सागर से चल कर आप लोद्रवा तीर्थ में पधारे। यहां सौभाग्य से चित्रा-वल्ली हाथ लग जाने से थिरुसाह भणशाली श्रावक द्वारा भगवान श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ स्वामी का कमनीयकला पूर्ण मंदिर स्थापन किया हुआ है। भगवान की परमशांत मुख-मुद्रा उस प्रत्यक्ष वीतराग-भाव की प्रतीक बन रही है। दर्शन करके गुरुदेव ने फरमाया-ऐसे तीर्थों के दर्शन आत्मा के दर्शन के लिये दर्पण जैसे मानने चाहिये।

संघ के साथ गुरुदेव ने ब्रह्मसर आदि तीर्थों की यात्रा की, और संयम की साधना, आत्मा की भावना, गुरु की भक्ति, संघ से सत्संग करते हुए वापस गति क्रम से श्री महातपस्वीजी महाराज गुरुदेव के साथ फलोदी पधारे। यहीं आपका फाल्गुन चतुर्मास भी हुआ। उस समय बीकानेर में तेरहपंथियों के प्रधान साधु फ़ौजमलजी

का उपदेश हो रहा था। आगमों के नाम से भोली जनता भरमाई जाने लगी थी। घेवरचन्दजी सेठिया आदि श्रावकों ने इस का ख्याल रख कर आपको बीकानेर पधारने की जोरदार विनती की। आपने भी लाभालाभ के विचार से वर्त्तमान योग-देखा जायगा फरमाया।

२७

❁ वाद में विशेषता ❁

वादे वादे जायते तत्त्व-बोध—,
स्तस्माद् वादः पण्डितैः संविधेयः।
वादः कार्यो नो विवादः कदाचित्,
यस्मात्तस्मिन् केवलं कण्ठ-शोषः॥

तत्त्वों की वारंवार चर्चा करने से-परस्पर में विचार विनिमय करने से-तत्त्व का विशिष्ट बोध होता है। इस-लिये पण्डितों को निज पर के हित की दृष्टि से वाद-तत्त्व चर्चा करनी चाहिये। वाद करो, पर-विवाद कभी मत करो। क्योंकि विवाद में केवल कण्ठशोष ही होता है।

गणाधीश्वर गुरुदेव श्रीमान् भगवान सागरजी महा-राज साहब के साथ विहार करते हुए महातपस्वीजी श्री छगनसागरजी महाराज लोहावट देणोक-भींयासर भोजा-सर-चाखु-चिमाणा-झज्झु आदि गावों में उपदेश करते हुए, कोलायतजी में पधारे। कोलयत वैष्णवों का प्रधान

तीर्थस्थान माना जाता है। यहां दूर २ के यात्री दर्शनार्थी आया करते हैं। उन्हीं दिनों बनारस के पण्डित श्री कृष्णानन्द चतुर्वेदी वहां अपनी-मण्डली के साथ यात्रार्थ आये हुए थे। संयोग-वशात् जिस धर्मशाला में पण्डितजी ठहरे हुए थे,-वहीं गणाधीश्वरजी महराज का भी उतरना हुआ था।

आपकी सौम्यमूर्ति संयम-प्रधान जीवन-चर्या आदि को देखकर पण्डितजी ने आपकी विद्वत्ता को जानने के लिये संस्कृत भाषा में आपसे पूछा—भगवन्तस्तत्र भवन्तो भवन्तः के ? आपने फरमाया—वयं जैनदर्शनानुयायि-साधवः। भारतीय दर्शनों में जैन-दर्शन भी अपना एक खासा महत्त्व रखता है। तत्संबंधी जिज्ञासा की पूर्ति के लिये पण्डितजी ने आपसे पूछा भगवन् ! जैन-दर्शन में पदार्थ-व्यवस्था किस प्रकार मानी गई है ? बताने की कृपा करेंगे तो मैं आपका बडा उपकार मानूंगा।

श्रीपद्मतपस्वीजी ने फरमाया कि जैन दर्शन-पदार्थ व्यवस्था को समझाते हुए स्याद्वाद-अनेकान्तवाद-जिसको आप अपेक्षावाद भी कह सकते हैं—की दृष्टि से काम लेता है। किसी ईश्वर विशेष की कृति रूप न मानते हुए इस अनादि अनंत संसार को जैन-दर्शन ने दो भागों में विभक्त माना है। जड-रूप में और चेतन-रूप में। जड

रूप में पांच पदार्थ माने गये हैं। उनके नाम हैं—१–धर्मास्तिकाय, २–अधर्मास्तिकाय, ३–आकाशास्तिकाय, ४–काल और ५–पुद्गलास्तिकाय ये पांचों पदार्थ जड हैं। पहिले चार अमूर्त्त हैं। पांचवां पुद्गलास्तिकाय मूर्त्त पदार्थ है। चेतन रूप में केवल आत्मा ही एक पदार्थ है, जो स्वरूप से एक होता हुआ भी संख्या की दृष्टि से अनंत है। अनादि काल की संतान परंपरा से जड चेतन का संयोग-संबंध हो रहा है। उसी से यह संसार है। पुरुषार्थ द्वारा आत्मा जड संयोग को काट देता है। तभी उसका मोक्ष होता है। मोक्षगामी आत्मा सादि अनंत कालावच्छेद से शरीर को छोड ऊंचे लोकान्तप्रदेश में जाकर स्वाभाविक सुखों को भोगता है।

पृथ्वी पानी हवा आग वनस्पती ये पांच एकेन्द्रिय जीव होते हैं। इनको स्थावर भी कहते हैं। दो इन्द्रिय से पांच इन्द्रिय को धारण करने वाले जीव क्रमशः लट, चींटी, मक्खी, पशु, मनुष्य आदि होते हैं। इनको त्रस कहते हैं। मनुष्य देह में रहा हुआ आत्मा ही स्त्री-शूद्र आदि किसी भी बाहरी अवस्था की बाधा को न मानता हुआ अहिंसा-संयम और तप की परमाराधना से परमात्मा बन जाता है। वेही परमात्मा सदेह अवस्था में अरिहंत और विदेह अवस्था में सिद्ध कहे जाते हैं। आचार्य उपाध्याय और साधु ये तीन पदवाले गुरु जैन दर्शन—

में माने जाते हैं। उक्त पांचों पदों में आत्मा-परमेष्ठी विशेषण को प्राप्त करता है। जैन दर्शन की प्रधान चर्चा आत्मा को लेकर ही होती है।

आत्मा की संसारी अवस्थाओं का प्रधान कारण-कर्म माना जाता है। वह कर्म-क्रिया मात्र ही नहीं, प्रत्युत पुद्गल विशेष का आत्मा के साथ संबंध रूप माना गया है। मीमांसकों के कर्मकाण्ड की या नैयायिक आदिकों के कर्मपदार्थ की परिभाषा से भिन्न ही जैनदर्शन का कर्मवाद विशिष्ट रूप से जानने योग्य है। हम ईश्वर-कर्तृत्व-वाद का निरास करते हुए आत्मकृत-कर्मवाद को प्रधानता देते हैं।

संसार में विभिन्न संप्रदायों की-अनेकविध दृष्टियों की विषमता का समीकरण जैनदर्शन में सुन्दर रूप से नित्यानित्य-वाद की स्वीकृति के साथ किया गया है। प्रत्येक पदार्थ अस्तित्व नास्तित्वादि-अनंत धर्मात्मक होता है। ऐसी जैन मान्यता के विरुद्ध व्यास सूत्रों में-नैकस्मिन्न संभवात्-सूत्र के द्वारा जो कुछ कहा गया है, वह अविचारित रमणीय है। आत्मवाद-कर्मवाद के जैसे ही स्याद्-वाद की अनोखी रचना जैनदर्शन ने विद्वानों को बताई है।

पंडितजी—श्री कृष्णानन्दजी महातपस्वीजी की ओजपूर्ण वाणी से प्रभावित हुए। सांप्रदायिक असहि-

ष्णुता से जैनियों को नास्तिक मानने की अविवेकिता के लिये क्षमा-प्रार्थी होते हुए कहने लगे भविष्य में जैनदर्शन-को आदर की दृष्टि से देखूंगा। गणाधीश्वरजी-महाराज-की एवं महा तपस्वीजी की स्तुति में एक श्लोक प्रस्तुत किया—

पुनातु नाम सारूयेन-मनो मे भगवान् भवान्।
महातपस्वि-सत्तीर्थ—जयता जग—कारणम् ॥

२८

❀ तेरह पंथियों से चर्चा ❀

दया-दानं प्रकुर्वाणा-गृहस्था गुणशालिनः।
वर्णिता आगमे पूज्यै-र्नित्यं मोक्षाधिकारिणः ॥

पूज्य पुरुषों ने आगम-शास्त्रों में दया-दान को करने वाले गुणी गृहस्थों को मोक्ष के अधिकारी रूप से बताये हैं।

हमारे चरित नायक श्रीमान् गणनायकजी की सेवा में कोलायतजी आदि स्थानों में भव्य-जीवों को प्रतिबोध करते हुए बीकानेर पधारे। उन दिनों वहां तेरहपंथी साधु-फोजमलजी अपनी फोज को बढ़ाने के लिये उपदेश में गाते थे।

असंजती अव्रतीजी—बांधे पाप री पोट ।
दान दया उणरी कियांजी—क्युं नहीं लागे खोट ॥
चतुर नर सुणज्यो तत्त विचार ॥।

तमासबीन लोग तमासा देखने की दृष्टि जाते थे । उनमें कई भद्रपरिणामी भव्यात्मा फँस भी जाते थे । कुयुक्ति पूर्ण कथानक भी मनोरंजक ढंग से सुनाये जाते थे ।

धनवान सेठ धन की नोली लेकर जाता था । उसके पीछे चोर लग गया । सेठ भागा—चोर ने उसका पीछा किया, पर—अफीम का नशा उतर जाने से चोर रास्ते में पड गया । पीछे से कोई गृहस्थ आ रहा था । उसने उस चोर पर दया करके— अफीम का दान दिया । अफीम खाकर चोर तगडा हो गया । दूणे जोर से सेठ का पीछा करके— पकड़ लिया । धन लूंट लिया । कहो अफीम देने वाले को धर्म हुआ या पाप ?

महा तपस्वीजी के सामने भी तेरह पंथियों के श्रोता आने लगे । उनके गीतों की कथानकों की चर्चा भी करने लगे । महा तपस्वीजी ने उनको उसी ढंग की गीत गाथाओं में समझाया—

खोट लगे निज भावसुंजी—विण भावे नहीं खोट ।
रोटी खा साधु मरे जी—पिण नहीं पाप री पोट ॥
चतुर नर सुणज्यो तत्त विचार ।

इसी प्रकार की प्रंशसनीय चर्चाओं से धर्म की प्रभावना करते हुए महातपस्वी जी का वि० सं० १९४६ का चतुर्मास बडे ठाठ के साथ बीकानेर में हुआ।

२९

* पाली में शासन-प्रभावना *

प्रभावयन्ति ये जैन-शासनं भव-नाशनम्।
अत्युज्ज्वलं यशस्तेषां, यावच्चन्द्र-दिवाकरौ॥

जो महानुभाव अपने पुण्य कर्त्तव्यों द्वारा भव-दुःखों के नाश करने वाले जैन शासन की प्रभावना करते हैं,- उनका अत्युज्ज्वल यश संसार में जब तक सूर्य-चंद्र रहेंगे तब तक रहेगा।

हमारे चरितनायक महातपस्वीजी श्रीमान् गणाधीश्वर गुरुदेव के साथ भीनासर उद्रामसर होते हुए देशनोक पधारे। करणी माता चारणी के प्रभाव से पूर्ण इस कस्बे में जिन मंदिर दादावाडी आदि दर्शनीय स्थान बने हुए हैं। ओसवालों के भी दो सौ तीन सौ घर मौजूद हैं। सत्संग के अभाव में प्रभुपूजा के विरोधीमतों का यहां जोर बढ रहा था। महातपस्वीजी ने यहां विराजकर उपदेश दिया भूरा छजलानी आदि जाती के लोगों को धर्म में स्थिर किये।

देशनोक में करणीदानजी भूरे ने पूछा महाराज! भगवानरी द्रव्य-पूजा करणी किसे सूत्र में बताई है? श्री-महातपस्वीजी ने फरमाया—महानिशीथ में, रायपसेणी में सूर्याभदेवता के अधिकार में। भूराजी ने कहा—ओ तो देवतारी करणी है? महातपस्वीजी ने फरमाया देवता की करणी तो है, पर इसको क्या कहोगे? अच्छी या बुरी? भूराजी ने कहा, भगवान की पूजा ने बुरी तो किसतरे कहीजें। महातपस्वीजी ने फरमाया बस जो काम अच्छा है, उसीको करनें के लिये हम कहते हैं। भूराजी ने कहा-अच्छो काम है तो आपने भी करणो चाहिजे। गुरुदेव ने फरमाया कि महानुभाव! तुम्हारी बात तो ठीक है, लेकिन साधु जल, चन्दन, फल, फूल आदि-द्रव्य-पूजा-का अधिकारी नहीं है। भगवान ने साधु के लिये भाव पूजा करने की आज्ञा ही फरमाई है। गृहस्थ अपने भोग के लिये उन चीजों को पैदा करता है, और भोगता भी है। भोग से संसार बढता है। उन चीजों का भोग न कर, भगवान की भक्ति में लगा देने से गृहस्थ त्याग धर्म की उपासना करता है। साधु ने तो उन चीजों का त्याग करके ही साधुपना लिया है। अतः उन द्रव्यों से पूजा करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसी लिये भगवान ने आज्ञा भी नहीं दी है। भगवान की आज्ञा के पालन से ही तो धर्म होता है। अपने अधिकार का खयाल करके ही हमें

गृहस्थ के घर की रोटी खाकर कदाचित् पेट दुख कर साधु मर जाय, तो—क्या गृहस्थ को पाप की पोट—या खोट लगती है ?। नहीं, क्यों कि—मारने की भावना ही नहीं है, तो—कैसे खोट लगेगी ?।

इसी तरह सोते हुए सेठ का धन चोर कर भागने वाले चोर का सेठ ने पीछा किया। अफीम का नशा उतर जाने से सेठ पड गया। पीछे से कोई गृहस्थ आ रहा था, उसने अफीम दिया। अफीम खाकर सेठ तगडा हो गया। दूणे जोर से दौड़ कर, चोर को सेठ ने पकड लिया। अपना धन वापस छीन लिया। कहो अफीम देनेवाले ने अच्छा किया या बुरा ?।

न्याय और पत्थर ठीक वे ठीक दोनों तरह से लगाने वाले की योग्यतानुसार लगता है। श्रोता लोग समान न्याय सुन कर दया दान की श्रद्धा स्थिर बनाने लगे। इस प्रकार फोजमलजी की फोज बढनी बंद हो गई उलटे जवाब देना भारी पडने लगा। ठीक ही तो था—मुकाबले की जोड होती है तभी पता चलता है कि कौन कितने पानी में रहता है—यों तो—ऊजडगांव में एरंडा भी प्रधान वृक्ष माना ही जाता है।

एक दिन स्थंडिल—शौच भूमी जाते हुए महा तपस्वी जी को रास्ते में फौजमल जी ने पूछा—तीन

करण तीन योग सुं हिंसा रो त्याग करने वाला थे—पाणी फूल-आगरा जीवों री हिंसा वाली द्रव्य पूजा रो उपदेश किण न्याय सुं देवो हो ?

महातपस्वीजी ने हंसते हुए प्रसन्नता से फरमाया जिस न्याय से तीन करण तीन योग से हिंसा का त्याग करने वाले आप एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यंत की हिन्सा-वाले विहार को करते हैं। नदी में उतरते हैं। गोचरी जाते हैं। पंचमी जाते हैं। उसी न्याय से हम द्रव्य पूजा-का उपदेश देते हैं।

फौजमलजी सिट पिटा गये। कहने लगे—ओ तो भगवान री आज्ञा सु करां हां महा तपस्वीजी ने फरमाया कि—हिन्सा होती है उसका क्या होगा ?। फौजमल जी ने कहा—भगवान री आज्ञा सु कोई काम करणे में हिंसा नहीं लागे है। महा तपस्वी जी ने फरमाया—महानुभाव भगवान की आज्ञा से की हुई क्रिया में हिन्सा नहीं मानते हो, तो—श्रावक के लिये द्रव्य पूजा-भाव पूजा करने की भगवान की आज्ञा है। उसमें हिंसा कैसे बताते हो ?। उप-देश देनेवाले हमको भी कैसे हिन्सा का दोष लगाते हो ? फौजमलजी चुप हो गये।

सारे-शहर में इस बात की चर्चा हो गई कि मंदिर मारगी साधु ने तेरा पंथियों को जीत लिया। अस्तु—

करणीय काम करने चाहिये। महातपस्वीजी के उपदेश को लोगों ने बडे प्रेम से सुना। प्रभु पूजा-दर्शन के नियम लिये मास कल्प रह कर आपने नागोर की तरफ विहार किया।

रास्ते में अलाय-गोगुलाव में आपके धर्मोपदेश से प्रभावित हो लोगों ने व्रत-नियम लिये। नागोर में आप की शिष्य मंडली कोठारी-डागा-खजानची—समदडिया आदि कों ने आपका भावपूर्ण स्वागत किया, चतुर्मास की जोरदार विनती की। परंतु-पाली वालों की चिर-कालिक प्रार्थना को लक्ष्य में रखते हुए, कुचेरा, खजवाणा, रुण बडलु, पीपाड, बिलाडा, सोजत-आदि क्षेत्रों में धर्म का प्रचार करते हुए आपने वि० सं० १९४७ का चतुर्मास पाली में किया।

पाली में उन दिनों डाकणियों का कुछ जोर हो रहा था। किसी बडे सेठ की पुत्र वधु व्याख्यान के प्रसंग में डाकणी के आवेश में बेहोश होकर नाचने लगी। तब-आपने नवकार मंत्र सुनाया। बलुंबलुं करती डाकणी भाग गई। आपने उस पर वासक्षेप किया बाद वैसा आवेश कभी नहीं हुआ। इसी तरह कई श्रावक श्राविका-ओं को भूतावेश से बचाया। लोग अपने घरों में भी—तुझे गुरुदेव की आण है—ऐसा कह कर डाकणियों से छुटकारा पाते थे।

पाली में भक्त मंडली ने आपसे भगवती सूत्र फरमाने की प्रेरणा की। आपने बडे ठाठ से श्री भगवती सूत्र का व्याख्यान फरमाया। तपश्चर्या तो आपके जीवन-की संगिनी थी। बेला तेला-अठाइयां और मास-क्षमण-की तपश्चर्या भी आपने की। आपके तप-त्याग-के प्रभाव से वहां उस समय वर्त्तमान सामाजिक फूट भी मिट गई, और धार्मिक एकता बढी।

कईयों ने बारह व्रत लिये। कईयों ने भांग-गांजा-तमाखु का त्याग किया। किसी ने केवल ब्रह्मचर्य व्रत-को स्वीकार किया। यहां के ओसवालोंने, पोरवाडों ने आप को अभेद भाव से अपना गुरु माना। स्थानीय खरतर आचार्य शाखा के श्रीपूज्यजी ने आपकी साधुता को और ज्ञान प्रधान प्रवृत्ति को बडी आदर की निगाह से देखा। अपने शिष्यों को आपके पास पढने को भी भेजा।

जिज्ञासुओं की उपस्थिति आपके उपाश्रय में बराबर बनी रहती थी। आत्मा--परमात्मा-कर्म-प्रमाण-नय लोक-अलोक आदि आपकी चर्चा के-विषय रहा करते थे। पाली का चतुर्मास-बडे शानदार ठाठ से पूर्ण हुआ।

३०

❀ सोजत में शास्त्र चर्चा ❀

शास्त्र-वार्ता-विनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेनैव मूर्खाणां — निद्रया कलहेन वा॥

ज्ञानी-पुरुषों का समय शास्त्रीय-चर्चा के विनोद में बीतता है। तो मूर्खों का समय नशा-जुआ आदि व्यसनों के पोषण में, नींद में, या व्यर्थ के विवाद में बीतता है।

पाली-चतुर्मास के बाद पूज्येश्वर गणाधीश्वर जी महाराज श्रीमान् भगवान सागरजी महाराज साहब विहार करते हुए सोजत पधारे। सोजत मारवाड की वीर भूमी-का प्रधान अंग है। यहां प्राचीन जिन मंदिर-दादावाडी उपाश्रय आदि धर्म के स्थान धार्मिक-वृत्तिवाले लोगों के-लिये सुन्दर रुप में बने हुए हैं। गुरुदेव के पधारने से जैन संघ में अपूर्व उत्साह दिखाई देने लगा। व्याख्यान सभायें जुड़ने लगी। महातपस्वी जी श्रीछगनसागर जी महाराज ने गणाधीश्वरजी महाराज की आज्ञा से धर्मदेशना देनी शुरु की।

आपकी धर्म-देशना सुनने के लिये स्थानीय श्रीमाली पंडित भी आने लगे। "उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्"-इस सूत्र के व्याख्यान में कहा जा रहा था कि—अनादि ऐसा संसार और उसमें रहने वाले जीव-अजीव पदार्थ प्रतिक्षण एक साथ उत्पत्ति और विनाश युक्त होते हुए भी स्थिति युक्त होते हैं। इसको यों कह सकते हैं कि—पदार्थ में जो नई अवस्था पैदा होती है वह पूर्वावस्था के विनाश के साथ ही होती है। नैयायिक त्रिक्षणवर्त्ती पदार्थ व्यव-

स्था को मानते हैं। पहिले क्षण में उत्पत्ति दूसरे क्षण में स्थिति और तीसरे क्षण में ध्वंस। किन्तु यह व्यवस्था सूक्ष्म दृष्टि से देखते हुए गलत प्रतीत होती है। क्योंकि उत्पत्ति स्थिति और लय ये तो प्रतिक्षण एक साथ ही होते हैं। इनमें क्षणान्तरों की कल्पना संसार की आदि की मान्यता के कारण हुई है। वस्तुतः कोई चीज नई पैदा नहीं होती—अवस्था नई पैदा होती है। द्रव्यार्थिक नय स्थिति को और पर्यायार्थिक नय उत्पत्ति एवं विनाश को बताता है। नय—एक अपेक्षा विशेष से बोलता है। प्रमाण—अनंत अपेक्षाओं को लक्ष्य में रखकर बोलता है। अभाव का भाव, और भाव का अभाव नहीं होता, ऐसा जब कि सनातन नियम है, तो फिर संसार की आदि को मानना त्रिक्षणवर्त्ती व्यवस्था को मानना, प्रमाणित कैसे हो सकता है। वह एक प्रकार से नय-वचन मात्र है। उसे प्रमाण वचन नहीं कह सकते।

महा तपस्वीजी की इस व्यवस्थात्मक व्याख्या को सुनकर एक श्रीमाली पंडित गदाधरजी ने कहा भगवन्! आप क्या फरमा रहे हैं? संसार की आदि नहीं हुई? और उत्पत्ति-ध्वंश जो कि परस्पर विरोधी धर्म हैं, वे एक साथ एक क्षण में पदार्थ में होते हैं? यह तो बड़ी विचित्र बात मालूम देती है। महातपस्वीजी ने फरमाया पंडितजी! यह बात उपरी दृष्टि से विचित्र मालूम देती है, पर है ऐसी ही।

नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः ।
उभयो रपि दृष्टोऽन्त-स्त्वनयो स्तत्त्वदर्शिभिः ॥
गी० अ० २—१६

अर्थात्—असत् वस्तु होती ही नहीं है। वैसे ही सद् वस्तु का अभाव भी नहीं होता। इन दोनों का अन्त-निश्चय तत्त्व दर्शियों ने देखा है।

भगवद्गीता के इस वाक्य को क्या आपने नहीं सोचा है ? यह पदार्थ मात्र की अनादिता को स्पष्ट बताता है। तर्क संग्रह और सिद्धान्त मुक्तावली जैसे न्याय दर्शन के ग्रन्थों में प्रथम क्षण में उत्पाद द्वितीय क्षण में स्थिति बताई है, परन्तु तृतीयक्षण में उत्पाद विशिष्ट ध्वंश को मन्जूर किया है। अंततो गत्वा तृतीय क्षण जो कि अपने रूप में एक क्षण विशेष ही है—उसमें युगपत् ध्वंश विशिष्ट उत्पाद को मानकर विरोधी धर्मों को एक साथ बताया है। जैन दर्शन इसी को बढाकर उत्पाद व्यय और ध्रुवता तीनों को एक साथ बताता है। इस पर एक कथा है कि—

महाराजा अजातशत्रु अपनी सभा में प्रसन्नता से मनो विनोद कर रहे थे। राजकुमार जयसिंह आकर महाराज से कहता है, पिताजी ! मुझे मुकुट बनवा दीजियें। राजा ने कारीगरों को आज्ञा दी कि—राजकुमारी जयसेना के घडे को तोडकर राजकुमार के लिये मुकुट बना

दो। उस समय राजकुमार प्रसन्न हो जाता है। उसी क्षण में राजकुमारी शोक विह्वल हो जाती है। तभी राजा को हर्ष और शोक कुछ भी नहीं होता, क्योंकि उसका सोना अक्षुण्ण था। यहां तीनों ने एक ही क्षण में उत्पाद व्यय और ध्रुवता को अपनी २ दृष्टि से देखा। इसी बात को किसी कवि ने बढ़िया ढंग से इस प्रकार बताया है—

प्रध्वस्ते कलशे शुशोच तनया मौलौ समुत्पादिते—
पुत्रः प्रीतिमुवाह कामपि नृपः शिश्राय मध्यस्थताम्।
पूर्वाकारपरिक्षयस्तपदराकारोदयस्तद् द्वया—
धारश्चैक इति स्थितं त्रयमयं तत्त्वं तथाप्रत्ययात्॥

राजकुमार के मुकुट के लिये राजकुमारी का कलश टूटता है, तब एक साथ एक को हर्ष और एक को शोक होता है। उसी क्षण में राजा सोने को यथावत् देखता हुआ न हर्ष न शोक—मध्यस्थता को धारण करता है। यहां पूर्वाकार के परिक्षय से ही अपराकार का उदय उसी सोने में हो रहा है। ऐसी प्रतीति होने से ही निश्चित है कि तत्त्व–पदार्थ उत्पाद व्यय और ध्रुवता वाला ही है।

जैन दर्शन प्रत्येक पदार्थ की व्यवस्था स्याद्वाद—अपेक्षावाद की दृष्टि से करता है। विधि–निषेध के प्रयोग द्वारा मोटे सात भंगों से वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन इस प्रकार होता है—

१—स्यादस्ति—पदार्थ अपने अनंत गुण-पर्याय रूप धर्म से संपन्न है ही। २—स्याद् नास्ति—वही पर-पदार्थों के अनंत गुण-पर्यायों वाला नहीं भी है। ३—स्यादस्ति नास्ति—पदार्थ में अपने-अनंत गुण पर्यायों की अस्तिता और परपदार्थों के अनंत गुण पर्यायों की नास्तिता भी रही हुई है। ४—स्याद्वाच्य—अस्तिता और नास्तिता अनंत होने से वह अवाच्य भी है। ५—स्यादस्ति अवक्तव्य—पदार्थ का अपना अस्तित्व भी अनंत धर्मात्मक होने से कथंचित् अवाच्य है। ६—स्यान्नास्ति अवक्तव्य—उसमें पर-पदार्थों के अनंत-धर्मों की नास्तिता अनंत होने से भी वह अवाच्य है। ७—स्यादस्ति नास्ति युगपद्वक्तव्य—पदार्थ में अपनी अस्तिता और पर पदार्थों की नास्तिता एक साथ वर्त्तमान होने से वह एक साथ भी अवाच्य है।

इस प्रकार स्याद्वाद सायदवाद या संशयवाद नहीं है। यह एक प्रकार का वस्तु का अपना निश्चित रूप है। स्याद्वाद हमारी दृष्टि को विशदता और विपूलता अर्पण करता है।

पंडित गदाधरजी एवं उपस्थित श्रोता जन महातपस्वीजी की मधुरवाणी को हृदयंगम करके बड़े प्रसन्न हुए। गुरुदेव के सामने महातपस्वीजी की भूरि भूरि प्रशंसा की। इस प्रकार सोजत में शास्त्र—चर्चा से जैन—धर्म की अनुपम प्रभावना हुई।

३१

❀ बिलाडा में व्यसन निरोध ❀

व्यसनं व्यसनं लोके, परायत्तकरं परम् ।
धन्या गुरूपदेशेन, न कुर्वन्तीह कर्हिचित् ॥

नाना प्रकार के व्यसन लोक में पराधीनता रूप-महा दुःख को पैदा करते हैं। इसलिये धन्य पुरुष सद्गुरु देव के सदुपदेश को सुनकर कभी भी व्यसन का सेवन नहीं करते हैं।

सोजत में श्रीमान् गणाधीश्वर जी महाराज ने महा तपस्वीजी की अनन्य योग्यता देख कर श्री पंच-मंगल महाश्रुतस्कंध की विशिष्ट साधना बताई। उस साधना से महा तपस्वीजी का तेज बहुत बढ़ गया। शाणोत्तीर्ण रत्न के समान आपकी देदीप्यमान मेधा-शक्ति-तपो ज्योति से अच्छे २ तमोगुणी और रजोगुणी वृत्तिवाले पुरुष सत्त्वगुणी बन जाते थे।

सोजत से विहार कर क्रमशः आप बिलाडा-जिस को बेणातट भी कहते हैं, जहां कि बेणा नदी बहती है, जहां सम्राट अकबर को जीवन के अन्तिम दश वर्षों में परमार्हत मंत्रीश्वर कर्मचन्द्र जी बच्छावत की प्रेरणा से बहुधा अहिंसक बनाने वाले युग-प्रधान आचार्य श्री-जिनचन्द्र सूरि चौथे दादा गुरुदेव की स्वर्ग भूमी है,

जिसे आई जी का सिद्धपीठ माना जाता है, जहां सीरवी जाती के किसानों के गुरु दीवान जी का शासना देश चलता है, जो प्रदेश मारवाड़ की शस्य संपत्ती का प्रधान केन्द्र माना जाता है। जहां जिन मंदिर दादावाडी आदि के दर्शनीय स्थान बने हुए हैं, उस-बिलाडा नगर में गणाधीश्वर जी महाराज के साथ हमारे चरित नायक महातपस्वीजी पधारे।

बिलाडा के स्थानीय जैन-संघ ने एवं नगर के मुखिया ओसवाल कटारिया जाती के नगर सेठ ने बडे ठाठ से आपका स्वागत किया। गुरुदेव की दिव्य सरस्वती वहां के भाग्यशाली पुरुषों के कर्ण कुहरों में पहुंचकर हृत्तंत्री के तार बजाने लगी। आपने वहां गांजा-अफीम तमाखु आदि के त्याग पर विशेष जोर दिया।

धुम्र पान नर जो करें, जरे कलेजा तास।
जहरीले उस धुम्र से, तन धन का हो नाश ॥

व्याख्यान चल रहा था। धुम्र पान के व्यसनी वहां अधिक थे। आपने पूछा—लालटेन जलता है उसकी चिमनी कभी काली होती है क्या? लोगों ने कहा बराबर। धुँए से तो होगा ही। गुरुजी ने पूछा धुँआ किस रंग का होता है? जनता ने कहा काला। काले रंग के कारण ही रात भर जले बाद दूसरे दिन लालटेन को साफ करना

होता है। तब दीये का प्रकाश ठीक होता है नहीं तो नहीं। महा तपस्वीजी ने फरमाया अरे भव्यात्माओं! तुम तमाखु आदि पीते हो क्या धुँआ पेट में जाकर कलेजे को दिमाग को-काला नहीं बनाता होगा? लोगों ने कहा गुरुदेव! ओ तो व्यसन हो गया है क्या करें? महा तपस्वीजी ने फरमाया अरे! व्यसन को संस्कृत में दुःख का पर्याय कहा है। व्यसन सेवन कर दुःखी क्यों होते हो।

गुरुदेव की प्यार भरी तर्जना को सुन कर कई भव्यात्माओं ने धुम्रपान के व्यसन का किसी ने अफीम गांजे का ऐसे त्याग किये। उनने फरमाया सुनो-भांग-गांजा तमाखु को गधा भी नहीं खाता है। किसी ने पूछा कि हे गधाजी! तुम भांग गांजा तमाखु क्यों नहीं खाते हो! वह कहता है, अरे भाई! मुझे बिना खाये ही लोग गधा कहते हैं। अगर उन चीजों को खाऊं, तो न जाने क्या क्या कहने लगें! इस लिये मैं तो नहीं खाता! भला सोचो तो जिस चीज से गधा भी परहेज करता है! उससे हमारा प्रेम कैसा ??! आप लोगों को व्यसन मात्र का त्याग करना चाहिये।

बिलाडा के जैन अजैन सीरवी आदि जाती के लोग बडे प्रसन्न हुए। कईयों ने कई प्रकार के नियम लिये। व्यसनों का त्याग किया। धन्य गुरु! और धन्य

वे भक्त !! मास कल्प करके आपने कापरडाजी की यात्रा की। बाद आप पीपाड पधारे ।

३१

❀ धर्म प्रभावना—परोपकार ❀

जीवनं पावनं तेषां, दर्शनं दर्शनप्रदम् ।
ये कुर्वन्त्यविरोधेन सम्यग् धर्म प्रभावनम् ॥

जो आगम के अनुकूल धर्म की प्रभावना को भली प्रकार करते हैं, संसार में उनका जीवन पावन माना जाता है, और उनका दर्शन आत्म दर्शन—सम्यक्त्व का कारण हो जाता है।

बसन्त की मादकता जीवन में गुदगुदी पैदा कर रही थी। कड़ुआ नीम भी अपनी मधुर सुगंधी से वायु मण्डल को भर रहा था। कोयल की मदमाती कूहू की शुरूआत होने लगी थी। पतझड के बाद पेडों पर नई कौंपलों के फूटने से पतन के बाद उत्थान का ना स्पष्ट हो रहा था। ग्रामीण लोग धान की लटाई से फुरसद पाकर जीवन के आनन्द का उपभोग करने के लिये पुराने कष्टों को भुलाते हुए चंग लेकर अपनी मीठी सुरीली तान में गाने गाते थे। होली के दिन ही चल रहे थे हमारे चरित नायक महा तपस्वी जी गुरुदेव गणाधी-

श्वर जी महाराज साहब के साथ पीपाड में धर्मोपदेश देते हुए बिराज रहे थे। पीपाड नींबाज ठाकुर की जागिरी का बडा कस्बा है। यहां हिन्दु मुसलमानों की अच्छी भली बस्ती है। उन दिनों अचानक हैजे की बीमारी फैलने लगी। जनता दुःख से त्राहि त्राहि करने लगी।

गुरुदेव की दिव्य दया से जैन संघ इस रोग से मुक्त रहा। किसी ने ठाकुर साहब के कामदार से कहा कि इस रोग की शांति के लिये जैन साधुओं से प्रार्थना की जाय कि वे इस महा-रोग की शांति का उपाय बतावें। कामदार जी ने कहा बात तो ठीक है। साधु-संत-जोगी जती अजब गजब की साधना वाले होते हैं। पूज्येश्वर गणाधीश जी महाराज के पास कामदार जी पहुंचे-प्रार्थना की कि भगवन ! इस दैविक प्रकोप की शांति कैसे हो ? गुरुदेव ने फरमाया मांसाहारी मांस खाना छोड दें, शराबी शराब पीना बन्द करें, और अपने २ इष्ट देवों का ध्यान करें तो यह उपद्रव तीन दिन में ही शांत हो जायेगा।

कामदार जी ने गुरुदेव को नमस्कार किया और गांव भर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कसाई की दुकानें और शराब के पीठे तीन दिन तक बंद रक्खे जायँ अपनी भलाई के लिये मांसहारी मांस छोड दें अपने २ इष्ट को

याद करें। मरता क्या नहीं करता—लोगों ने वैसे ही किया। गुरुदेव ने स्वयं तीन दिन तेला करके जनता की मंगल कामना की। रोग जैसे था ही नहीं शांत हो गया। गुरुदेव की बडी भारी–महिमा और जैन धर्म की प्रभावना हुई।

पीपाड से साथीण कोशाणा आदि गांवों में धर्म का–प्रचार करते हुए। आप गोठण पधारे--यहां का चूना बडा प्रसिद्ध होता है। वहां से आपने फलोदी पार्श्वनाथ भगवान के महा महिमशाली तीर्थ के दर्शन किये। खजवाणा कुचेरा आदि स्थानों में आपके उपदेश से बहुत धर्म प्रचार हुआ। अपने तपोमय ज्ञानमय जीवन से जनता का परोपकार करते हुए आपने विक्रम संवत् १९४८ का चतुर्मास नागोर में किया।

छह साल के बाद आपका यह दूसरा चतुर्मास–नागोर में हो रहा था। दूज के चन्द्रमा की वर्द्धमान कला के जैसे गणाधीश्वर गुरुदेव की परम दया से एवं आत्म जागृति की निजी भावना से महा तपस्वी जी की दिव्य ज्योति बढी चढी थी। विरोधी मतवाले भी आपके सामने नत मस्तक हो जाते थे आपकी ज्ञान निष्ठ संयम पालना के प्रताप से आपके आस पास में और स्थानीय संघ में सर्वत्र सुख शांति का अखंड साम्राज्य छा रहा था।

नागोर में उस साल वर्षाद की खेंच हो रही थी। एक दिन आप माही दरवाजे की तरफ स्थंडिल भूमी-शौच के लिये पधार रहे थे। कुछ लोग वहां खडे हुए थे, उनमें से किसी एक बेसमझ आदमी ने जोरों से कहा, कि इन बनियों के गुरुओं के कारण पानी नहीं बरस रहा। महा तपस्वीजी ने वहां खडे होकर धीर-गंभीर स्वर में फरमाया कि अरे यह पानी तो आ रहा है न? तू हमको क्यों दोष देता है? उस बेसमझ को क्या पता था? कि पानी आने ही वाला है-उसने कह दिया महाराज! पानी तो आंखों में आवेगा। आकाश तो साफ हो रहा है। बादल का नाम नहीं है। देखते नहीं हो क्या? महा तपस्वीजी ने फरमाया, जाकर अपने घर के सामान को ठीक कर लो। पानी आ रहा है। सब भीग जायेगा।

महात्माओं की वाणी अमोघ होती है। ईशान कोण में एक छोटासा बादल उठता दिखाई दिया। वह थोडी देर में सारे आकाश में छा गया। वरषाद होने लगी। थोडी ही देर में तो ऐसी वर्षा हुई कि कुएं, तलाब, बावडी नाले, खाले सब भर गये। सर्वत्र आनन्द की लहरें उछलने लगी। लोगों ने कर्णोपकर्ण सुना, कि अरे माई! आज तो उन महा तपस्वी साधु की वाणी का चमत्कार हो गया है। पानी हो जाने से अशांति मिट गई। लोग

गुरूदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा वाले हो गये ।

व्याख्यान में समवायांग सूत्र और समरादित्य—चरित्र की परम वैराग्य रस पूर्ण देशना चौमासे के दिनों में महातपस्वीजी के मुखारविंद से होने लगी । कोठारी खजानची डागा, समदड़िया, सुराणा पुरोहित आदि जाती के लोगों ने व्याख्यान को सुनकर अपनी २ शक्ति के अनुसार त्याग-प्रत्याख्यान किये । पूजा-प्रभावना स्वामी-वात्सल्य आदि का ठाठ रहा । लोगों में ज्ञान ज्योती का प्रकाश बढा ।

पूज्येश्वर गणाधीश्वरजी महाराज साहब श्रीमान् भगवान सागरजी सद्गुरु देव की वृद्ध अवस्था थी । शरीर की शिथिलता के कारण लम्बा विहार होना कठिन होगया था । अतः आप चौमासे बाद फलोदी मारवाड की तरफ वहाँ के लोगोंके आग्रह को मान्य फरमा कर पधारे ।

३२

❁ साधुनियम—समुदाय संगठन ❁

देश-कालोचितं कार्यं—हितं नियमितं भवेत् ।
संहतिरपि साधूनां—समाजोत्थान—कारणम् ॥

साधुओं के हितकारी, नियमबद्ध, देश और काल में

उचित-कार्य, एवं संगठन, समाजोत्थान के कारण होते हैं।

पहाड पर चढने में जितनी कठिनता होती है, उतनी ही अथवा उससे भी अधिक सरलता पहाड से उतरने में मालूम होती है। उतरने में असावधानी भी अधिक होती है। असावधानी में पैर का फिसल जाना कोई बडी बात नहीं है, और उस समय गिरने वाले की हड्डी पसली ही टूटती है—सो बात नहीं, प्राणान्त तक हो जाता है। यही बात हमारे जीवन के उपर उठने में, और नीचे गिरने में होती है। जीवन का ऊंचा उठना उतना सरल नहीं जितना कि पतन।

अपनी कमजोरियों के कारण मनुष्य सारे संसार से उपर रहना चाहता हुआ भी दूसरों की दृष्टि को बचाकर नीचे गिरने के काम बड़ी आसानी से कर लेता है, और नरक-तिर्यंच आदि दुर्गतियों का अधिकारी बन जाता है। इसके लिये महात्मा लोग समय २ पर खतरे की घंटी बजाकर लोगों को सावधान करते जाते हैं।

समयं गोयम मा पमायए।

गृहीत इव केशेषु, मृत्युना धर्ममाचरेत्।

आदि सुवर्ण वचन इसी लिये शास्त्रों में प्रयुक्त किये हुए मिलते हैं।

हमारे चरित नायक महातपस्वीजी भी जागरूक प्रहरी की भांति स्वयं सावधान रहते हुए पूज्येश्वर गणाधीश्वर गुरुदेव श्रीमान् भगवान सागरजी महाराज साहब की छत्रछाया में अपने साधु-साध्वी समुदाय को सावधान करते जाते थे। सावधानता के लिये समय २ पर उपदेश देते थे। समय पर कोमलता, और समय पर कठोरता को भी धारण करते थे। आपने इसी उद्देश्य से कुछ नियम भी बनाये थे।

१—दीक्षा लेने से पहिले ही भावी साधु-साध्वी को अपनी श्रद्धा, अपना ज्ञान, और अपना चारित्र प्रशस्त बनाकर मां बाप सासु-सुसरा आदि अपने बडों की आज्ञा प्राप्त कर ही दीक्षा लेनी चाहिये। अनुशासन में रहने वाला व्यक्ति ही शासन की सेवा और आत्मा का कल्याण कर सकता है।

२—साधु हुए बाद गृहस्थ संबंधियों से ममत्व नहीं रखना चाहिये। गृहस्थियों का संबंध केवल धार्मिक विचारों से ही रहना चाहिये। ममत्व से उभरती हुई वासनायें प्रबल होती हैं, और साधु के पतन का कारण बन जाती हैं। पतित साधु शासन सेवा का या आत्मकल्याण का अधिकार खो देता है।

३—अपनी श्रद्धा मजबूती के लिये जीव अजीव के

स्वरूप को जानना चाहिये। समय २ पर काम आने वाली क्रिया के सूत्रों को अर्थ-हेतु सहित याद करने चाहिये। मन-वचन और काया को अधिकाधिक नियम में लाना चाहिये। अपनी श्रद्धा ज्ञान और चारित्र के बल से ही साधु आदर का पात्र बनता है।

४—विना विशेष कारण के दिन में सोना नहीं चाहिये। रात में भी मर्यादा का खयाल रखना चाहिये। बने वहां तक एकवार भोजन करना चाहिये। तप-त्याग में प्रेम बढाना चाहिये। तप-त्याग से ही मन और इंद्रियां काबु में आती हैं, और उससे साधु सुगति का अधिकारी होता है।

५—साधु स्त्रियों से और साध्वी पुरुषों से धर्म-उपदेश तत्त्वचर्चा आदि करते समय भी अपनी मर्यादा का खयाल रखें। साधु जीवन सफेद चादर के जैसा है, जिसमें साधारण सा दाग भी बुरा सा मालूम देता है।

६—साधु-साध्वी को विशेष कारण के विना एक क्षेत्र में ही अधिक रहना नहीं चाहिये। विचरने से दर्शन ज्ञान और चारित्र की निर्मलता होती है। उससे शासन सेवा का अपूर्व लाभ प्राप्त होता है। एक क्षेत्र में पडे रहने से प्रमाद बढता है। प्रमादी पाप की खाण बन जाता है।

७—जरूरत से अधिक वस्त्र-पात्र--उपधि का संग्रह न करे। साधु—साध्वी संग्रह की वृत्ति से संसार को ही बढाते हैं, और संसारी जीवों के अनादर के कारण होते हैं।

८—साधु-साध्वी अपने साधु-साध्वियों की—महिमा बढावें ईर्ष्या न करें। बुराई तो कभी न करें। कुछ कहने योग्य बात हो तो भी कटुता को हटाकर प्रेम से कहें। इससे गृहस्थों को धर्म प्राप्ति के कारण हुआ जा सकेगा। अन्यथा अधर्म पैदा होगा।

९—निर्लज्जता, अविनय, लडाई झगडे, उद्दण्डता, मर्यादाहीन आचरण, क्रोध, निंदा आदि दुर्गुणों का साधु साध्वी सर्वथा त्याग करें।

१०—अपना समय अपनी और पराये की श्रद्धा को मजबूत बनाने में, नये अनुभव को बढाने के लिये शास्त्र अभ्यास में और आगमानुकूल आचार विचार के पोषण में बीतावें। गया हुआ समय फिर वापिस प्राप्त नहीं होगा।

११—भगवान श्री महावीर देव के शासन की प्रभावना न कर सके न सही पर अपभ्राजना नहीं करवानी चाहिये। गुरु की आज्ञा में किन्तु परन्तु को नहीं करना चाहिये। आज्ञाहीन और क्रियाहीन मनुष्य स्व-पर का

अहित-करने वाला होता है। उससे बचना चाहिये।

इस प्रकार के नियमों को महा तपस्वीजी ने खुद भी पाले और दूसरों को भी पालने योग्य बनाया था। गुरुदेव! हम भी ऊपर के नियमों को जीवन-परिणत कर सकें तो कितना अच्छा हो।

फलोदी में वृद्ध साधु-सध्वियों को रहने-का सुभीता होने से प्रायः साधु साध्वी बने ही रहते हैं। पूज्येश्वर गणाधीश्वरजी महाराज साहब ने भी अपनी वृद्धावस्था के कारण फलोदी को पसंद किया। फलोदी लोहावट के आठ कोस के अन्तर वाले क्षेत्रों में चतुर्मास करने शुरु किये। इस प्रकार १९४९ का चतुर्मास लोहावट में भाविक भक्तों की भाव पूर्ण प्रार्थना से सफलता पूर्वक हुआ

३३

॥ समय का सदुपयोग ॥

कलावतः सैव कला, ययाधः क्रियते भवः।
शेषाभिश्च कलाभिः किं-याभिरङ्कः प्रदर्श्यते॥

चन्द्रमा की वही कला-श्रेष्ठ कला है, जिससे वह भव-महादेव के मस्तक पर चढता है। उन बहुत कलाओं से क्या? जिनसे कि चन्द्रमा अपने कलंक का प्रदर्शन

करता है।

इस श्लोक का दूसरा भाव यह है कि-कलावान पुरुष की वही कला श्रेष्ठ है जिससे भव-संसार नीचे किया जाकर खुद कलावान ऊपर उठे। उन बहुत कलाओं मे क्या जिनसे आत्मा के कर्मबन्धरूप कलंक के दर्शन हों।

समय और साधन सबको प्राप्त होते हैं पर-अधिकारी व्यक्ति ही उनका सदुपयोग कर सकता है। इसी से वह संसार में महान् बन जाता है।

हमारे चरितनायक भी उन्हीं अधिकारी पुरुषों में से एक थे। जिन्होंने मनुष्य जन्म-सद्गुरुदेव का सत्संग शास्त्रों का श्रवण-और चारित्र धर्म की प्राप्ति करके अपनी आत्म-कला से संसार को तनु प्रतनु बनाया था।

पूज्येश्वर गणाधीश्वरजी महाराज के साथ-उनकी वृद्धावस्था के कारण १९५० का चतुर्मास फलोदी में ५१ का लोहावट में ५२—५३ का फलोदी में ५४ का लोहावट में ५५ का फलोदी में ५७ से ६४ तक के फलोदी में चतुर्मास किये। विक्रम संवत् १९५७ के जेष्ठ कृष्णा १४ के दिन पूज्येश्वर गणाधीश्वर गुरुदेव-श्रीमान भगवान सागरजी महाराज साहब जो कि महा तपस्वी जी को अनन्य प्रेम से ज्ञान दान देने वाले थे। महा तपस्वीजी के संयम मार्ग में अनन्य प्रेरणा करने वाले और सहायक

थे। जो स्वयं अखंड संयम की साधना में प्रवृत्त होते हुए चातुर्विध संघ की सेवा में अपना जीवन लगा कर अपने गणाधीशपद को सफल बनाने वाले थे। जिनका मति ज्ञान और श्रुत ज्ञान बडी ऊंची कोटि का था। जिनने रोहिणा मारवाड में चौधरी खानदान में जन्म लेकर आबाल ब्रह्मचारी रहते हुए पूज्येश्वर गणाधीश्वर श्रीमान् सुखसागरजी महाराज के वरद कर कमलों से दीक्षित हो कर अपने-ज्ञानी-ध्यानी और तपस्वी जीवन का प्रकाश महातपस्वी जी आदि के जीवन में भर दिया था। जिनने अपने उत्तराधिकारी समुदाय के स्वामी महा तपस्वीजी को बना दिया था। वे पूज्येश्वर गणाधीश्वर गुरुदेव समाधि पूर्वक परमेष्ठी स्मरण करते हुए काल-धर्म को प्राप्त हुए गुरुदेव के स्वर्गवासी होने पर संघ ने अष्टाह्निक महोत्सव किया। महा तपस्वीजी गुरु वियोग को कष्टप्रद मानते हुए भी यह संयोग-वियोग संसार का धर्म है ऐसा जानकर आत्म धर्म में लीन होते हुए समुदाय की सुरक्षा में साव-धानतासे लगे रहे।

महा तपस्वीजी महाराज ने गणाधीश पद को संभाले बाद विशेष रूप से ज्ञान का प्रचार करना शुरू किया। कोई साधु-साध्वी शिथिलता को दीखाते तो, उसे वे यों ही सहन नहीं कर लेते थे। वे फरमाया करते थे चारित्र हीन साधुओं के टोले से चारित्र पात्र थोडे साधु

भी समाज का देश का भला कर सकते हैं।

श्री भगवती आदि सूत्रों का स्वाध्याय तो आपके जीवन का अंग था। स्वाध्याय का त्याग आपको जीवन त्याग के जैसा अखरने वाला मालूम देता था। तपश्चर्या तो चलती ही थी, पर दिन में स्वाध्याय और रात का ध्यान आप खूब अच्छे ढंग से करते थे।

आर्तध्यान और रौद्रध्यान को आपने कभी नहीं किया होगा। धर्म ध्यान के आज्ञा विचय अपाय विचय विपाक विचय और संस्थान विचय रूप भेदों का ध्यान बरावर आप को बना रहता था। आप शुक्ल ध्यान के अधिकारी हो चुके थे। कई लब्धियां और सिद्धियां आप को प्राप्त थी।

साथ वाले साधु और पौषध के समय साथ रहने वाले श्रावक महा तपस्वी जी को रात में बैठा का बैठा देखते तब लोग पूछते बापजी आप कभी सोते भी नहीं हैं। क्या बात है ? तब बापजी फरमाते भाई सोते सोते तो अनंत काल बीत गया अब भी सोना नहीं छुटा है यही एक दुख की बात है। गृहस्थ सोने के लिये दुःखी होता है तो साधु भी सोने के कारण ही दुःखी हो जाता है। सोने के द्वयर्थक भावों को सोच कर सुननेवाले खुश हो जाते, और महा तपस्वी जी की चरण धुली मस्तक में

लगा कर कृतार्थता का अनुभव करते थे। धन्य थे वे दिन और धन्य थी वे क्षणें।

ते हि नो दिवसा गताः।

३४

❀ साधुओं की अभिवृद्धि ❀

यथा प्रकाशस्तमसां—भिदे भवति सर्वदा।
तथाऽऽदर्श-प्रकाशार्थं—स एवेहाऽभिजायते॥

जैसे प्रकाश अंधेरे को मिटाने के लिये होता है। उसी प्रकार आदर्श प्रकाश को पैदा करने के लिये भी वही काम देता है। प्रकाश के जैसे ही साधु पुरुष साधना द्वारा अज्ञान को मिटाते हैं और वैसे ही दूसरों में महत्त्वोत्पादक साधुता को भी पैदा करते हैं। प्रकाश में और साधुपुरुष की साधना में बडी समानता दिखाई देती है।

हमारे चरितनायक महातपस्वी गणाधीश्वर श्रीमान् छगनसागरजी महाराज साहब प्रकाश के पुंज थे। आपके उपदेश से, दर्शन से, भव्यात्माओं के हृदय-कमल खिल जाते थे। आपकी त्याग-प्रधान जीवनचर्या को देखकर और त्याग प्रधान वाणी को सुनकर कई भव्यात्मा त्याग धर्म—साधु धर्म के अधिकारी हुए।

मारवाड़-फलोदी तहसील के पूर्वी प्रदेश के गड़िया गांव में हनुमानसिंहजी चौहान के घर, धर्मपत्नी श्रीमती केसरदेवी की कुक्ष से जन्म पाने वाले मुझको आपने ही अपने वरद करकमलों से भागवती-दीक्षा प्रदान की थी। उस समय मेरा नाम हरिसिंह था। पूज्यपाद गणाधीश्वर श्रीमान् भगवानसागरजी महाराज साहब गृहस्थावस्था में मेरे चाचा लगते थे। इसी कारण से श्रीमान् महातपस्वीजी महाराज ने ही मुझे उनके नाम से दीक्षा दी थी। उस समय मेरी अवस्था आठ वर्ष की थी। मेरी दीक्षा शिक्षा का सारा कार्यक्रम पूज्येश्वर महातपस्वीजी की छत्र-छाया में ही संपन्न हुआ है। बचपन का प्रारम्भी जीवन भी उनकी परम तेजस्वी और दयालुवृत्ति के कारण ही जैन संघ की सेवा का अधिकारी बना है। आप मुझे प्यार भरे—हरिया—नाम से पुकारते थे। वह वाणी आज सुनने को नसीब नहीं है, फिर भी कभी २ आपकी वह मधुर पुकार कानों में झंकृत होती है, और मुझे रोमांच हो आता है। श्रीमहातपस्वी गुरुदेव की तपोमय तेजो विभूति ही मेरे जीवन की अमूल्य-निधि है। वि० सं० १९७७ की आषाढ कृष्णा ५ मी के दिन फलोदी में पारमेश्वरी प्रव्रज्या को प्रदान कर मुझे हरिसागर इस नाम से प्रसिद्ध किया।

विक्रम संवत् १९७८ की जेठ वदी आठम के दिन

मेरे बड़े भाई कस्तूरसिंह को भी आपने दीक्षा दी और कल्याण-सागर नाम दिया। कर्मयोग से वह साधुपना नहीं निभा सकने से आपकी सेवामें रहने के सौभाग्य से वंचित रहा। साधुता को यथावत् निभाना कोई हंसी ठट्ठा नहीं है। बड़े बड़े ऋषिमुनि भी कर्मों के उदित होने पर संसार की हवा में उड जाते हैं। इसी लिये भर्तृहरि आदिकों ने ठीक ही कहा है कि—

'तस्मै नमः कर्मणे'

कृतकर्मक्षयो नास्ति—कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं—कृतं कर्म शुभाशुभम्॥

फलोदी के श्रावक छोगमल जी जो कि महातपस्वी जी की गृहस्थावस्था के साला जी थे। एवं हैद्राबाद-पालीताना, जेसलमेर, फलोदी आदि में महातपस्वी जी के सत्संग में प्रधान रूप से जिज्ञासु और मुमुक्षु भाव वाले थे उनने गुरुदेव की परम वैराग्य रस-संपन्न देशना को सुनकर भवतारणी—भागवती दीक्षा वि० सं० १९६० के वैशाख शुक्ला २ को स्वीकार करके क्षमासागरजी नाम से प्रसिद्ध हुए। वे सिर्फ दो-महिना और पांच दिन के निर्मल निरतिचार संयम को पालकर आत्म कल्याण के अधिकारी हो स्वर्गवासी हो गये। कहा है—

साधुपना दिन एक भी—पालें जो साविवेक।
वे नर सुर-शिव सुख लहें—परमातम पद नेक॥

महा तपस्वी जी की वाणी में एक प्रकार की—मधुरता थी, ओज था, और था आत्मा का महान-प्रकाश खाचरोद निवासी श्रीयुत हुकमीचन्द छाजेड ने इसी से गुरुदेव की देशना से प्रभावित हो अपने नौ-निहाल पुत्र रत्न श्री नन्दलाल के साथ सर्वविरति—चारित्र को ग्रहण कर आप से पंच महाव्रत १९६३ जेठ सुदी १२ को स्वीकार किये थे उन पिता पुत्र का नाम क्रमशः श्री पूरणसागरजी और श्री क्षेमसागरजी रखा गया। श्री क्षेमसागरजी मधुर भाषी संस्कृत—प्राकृत के विद्वान् और साधु-वृत्ति के अनन्य साधक थे। विक्रम सं० १९७९ में रतलाम में छोटी उम्र में ही इनका स्वर्गवास हो गया। साधु क्षेमसागर जी ने मोहजित चरित्र आदि ग्रन्थों की सुन्दर रचना की है। इनके शिष्य मुनि वल्लभ सागर जी भी बडे—तपस्वी हुए। पूरणसागर जी का स्वर्गवास नाडुलाई में हुआ था।

श्री महा तपस्वी जी का प्रभाव जैनों पर ही पडता था सो बात नहीं थी। अजैनों पर भी आपका काफी प्रभाव पडता था। इसी लिये आपके द्वारा बोध को पाकर पिरेउ (मारवाड) के महेश्वरी—जाती के टावरी गोत्र वाले श्री किसनीरामजी ने वि० सं० १९६३ की जेठ सुदी तीज के दिन आपसे दीक्षा लेकर श्री नव-निधिसागरजी इस नाम से प्रसिद्ध हुए। ये बडे ध्यानी और क्रियापात्र साधु थे।

इनको माला से बडा प्रेम रहता था, और स्वाध्याय का तो भारी शोख था। ये कहा करते थे—

गिरस्ती केरा टूकडा—लांबा लांबा दांत।
भजन करे तो उबरे—नहीं तो काढे आंत॥

ये बडे खुश मिजाज थे, बच्चों में धार्मिक संस्कार-डालना और सूत्र पाठ सिखाना-इन्हें खूब पसंद था। आपका स्वर्गवास फलोदी में वि० सं० २००० की काति बदी दूज को हुआ। इनके सिखाये हुए गृहस्थ लोग अब भी बाबा जी महाराज के नाम से उनका स्मरण करते हैं। श्री नवनिधिसागरजी बाबाजी के शिष्य देवेन्द्रसागर, शांतिसागर, हिम्मतसागर थे। एक मुनि प्रेमसागरजी हमारी आज्ञा में इस समय वर्त्तमान हैं।

इस प्रकार श्री महा तपस्वीजी महाराज के सदुपदेश से कई भाग्यशाली साधुपद के अधिकारी हो आत्म कल्याण के भागी हुए। कई साध्वियां भी आपके उपदेश से हुईं। एवं कई बारह व्रतधारी श्रावक श्राविका भी हुए।

-३५-

॥ शासन-प्रभावकता ॥

प्रभावयन्तीह जिनेश्वराणां,
ये शासनं ज्ञानधनाः सुधन्याः।
ते तीर्थनाथत्वमथाप्नुवन्ति,
कथापि तेषां कलिनाश-हेतुः॥

जो धन्यपुरुष श्री जैन शासन की प्रभावना करते हैं वे ज्ञानधन तीर्थनाथ-पद को पाते हैं। उनकी कथा कहने सुनने वालों को-क्लेश के नाश का हेतु होती है।

ऊगते सूर्य को जनता अर्घ्य देती है। वर्द्धमान कला-वाले दूज के चन्द्रमा को हाथ जोडे जाते हैं। आग मिली राख से भी दुनिया डरती है। इसी प्रकार शक्ति संपन्न साधु भी संसार में परम आदर के पात्र-होते हैं।

हमारे चरित-नायक महातपस्वीजी महाराज भी अपनी आध्यात्मिक शक्ति से संपन्न थे। पहिले बताया जा चुका है। आबु से अचलगढ जाते समय रास्ते में सिंह से मुका-बला हुआ था, और सिंह सिर झुका कर पास होकर निकल गया था।

इसी तरह एक बार नागोर से खींवसर की तरफ जाते हुए रास्ते में एक ढाणी में ठहरना हुआ था। एक राजपूत अपनी ठकुरानी को लेकर आरहा था, किसी भूत की बाधा से ठकुरानी ग्रस्त थी। ठाकुर परेशान था किंकर्त-व्य-मूढ बने हुए उसने गुरुदेव से अर्ज की कि भगवन् दया होनी चाहिये, हमारी गुवाडी बरबाद हो रही है। गुरुदेव ने फरमाया मांस-शराब छोड दो सब ठीक हो जायगा। मरता क्या नहीं करता—ठाकुर ने मांस और शराब का उसीदम त्याग कर दिया गुरुदेव ने शांति पाठ

सुनाया ठकुरानी की भूतबाधा मिट गई। ठीक इसी ढंग की घटना पाली के चौमासे में घटित हुई थी। पीपाड में हैजे का मिटना—नागोर में अचानक वर्षा का होना आपकी अमोघवाणी के चमत्कार ही तो थे, जिनका वर्णन गये प्रकरणों में लिखा जा चुका है।

मेडता और कोशाणा के बीच की बात है। एक दिन सुनारों की बरात जा रही थी। कुछ उद्दंड व्यक्तियों ने कहा—

लांबी लकडी लांबी डोर।
ढूंढिया बेटा पक्का चोर॥

महातपस्वी जी ने फरमाया अरे तुम लोग साधुओं की मजाक करते हो, चोर मिलेंगे तब तो भागते नजर आओगे। आपका तो फरमाना था कि ४ ऊँट चढे डाकू आ धमके, और डांटकर कहने लगे गहने-गांठे खोल दो नहीं मारे जाओगे। बडी बुरी हालत थी उन उद्दंडों की। बच्चे बूढे रोते हुए कहने लगे बचाओ बाबाजी! हम तो मारे गये। महातपस्वीजी ने उनकी दयनीय दशा से परेशान होते हुए डाकुओं को फरमाया कि भाग्यशालियों! अन्याय से उपार्जित धन महान दुःख का हेतु होता है तुम क्या कर रहे हो। डाकुओं ने महातपस्वीजी की उस सिंहगर्जना सी वाणी को सुनकर कहा बाबाजी क्या ये

आपके आदमी हैं ? गुरुदेव ने फरमाया ये और तुम सभी हमारे आदमी हो भाग जाओ अभी पकडे जाओगे। ठीक बात थी पीछे से कुछ पुलीस सवारों ने डाकुओं का पीछा किया था। डाकु भाग गये सुनार बच गये और उन्होंने श्री महातपस्वीजी के पैर पकडे और कहने लगे, बाबा साहब हमारी धृष्टता के लिए क्षमा करें। गुरुदेव ने फरमाया आइन्दा साधु संतों की हंसी मजाक मत करना।

आपकी चमत्कारिक वासक्षेप से बीकानेर में सेठिया सुराणा, नागोर में डागा, लोहवट में पारख फलोदी में गुलेछा आदि श्रीमान और सम्मानीय पद वाले हुए।

फलोदी में एक योगी आये हुए थे। उन्होंने आपकी तारीफ सुनी। आपके दर्शनार्थ योगीराज आये। योग संबंधी विचार विमर्श हुआ। पातंजल योगदर्शन के—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

सूत्र की योगीराज ने व्याख्या की तब महातपस्वी जी ने फरमाया जो योग की परिभाषा आप कर रहे हैं। यह तो अपूर्ण है। केवल चित्तवृत्ति के रोकने मात्र से योग नहीं बनता। योग—मोक्षानुकूल प्रवृत्ति करने में चित्त-वृत्ति को जोडने से बनता है। चित्त-वृत्ति-निरोध पागलों में, शराबियों में, गंजेडी-भंगेडियों में भी हो सकता है, पर

वह चित्तवृत्ति निरोध आत्मानुयोगी न होने से योग कह-लाने योग्य ही नहीं है।

आपकी इस व्याख्या को सुनकर योगी आपके प्रति बड़ी श्रद्धा की निगाह से देखने लगे। बड़ा घनिष्ठ प्रेम होगया। योगी ने आपसे जैन दर्शन में योग की व्याख्या क्या है? भली भांति समझी।

तमासगीर की भांति आप को अपना चमत्कार दिखाना प्रिय नहीं था। अगत्या प्रभावना के हेतु कभी बताया तो आपने बताया था। यों ही आओ, देखो वाली बातें नहीं थी। आप बहुत ऊंचे पहुँचे हुए महात्मा थे। आप फरमाया करते थे-कि-आत्म-शक्ति को मदारी के खेल के जैसे प्रदर्शन का विषय नहीं बनानी चाहिये।

३६

❀ महातपश्चर्या—महाप्रस्थान ❀

महातपस्विनामत्र-महाप्रस्थानवृत्तिता
महोदय-कृते चैव-महते महसे भवेत् ॥

इस लोक में क्रोधादि-विषयों का शब्द-वर्ण गंध-रस स्पर्शादि विषयों का एवं आहार आदि भोगों का त्याग करने रूप तपश्चर्या को करने वाले महातपस्वी-ज्ञानी महात्माओं का महाप्रस्थान-मृत्यु महान उदय के लिये एवं महान उत्सव के लिये होता है।

हमारे चरित नायक पूज्येश्वर गणाधीश्वर महातपस्वी श्रीमान् छगनसागरजी महाराज साहब को अपनी वृद्धावस्था जनित—शरीरादि कारणों से एवं स्थानीय संघों की अनन्य भक्ति भावनामय प्रार्थनाओं के होने से लंबे विहार की इच्छा रखते हुए भी फलोदी लोहावट के सीमित क्षेत्रों में ही चतुर्मास करने पडे। आपका प्रत्येक चतुर्मास ज्ञान-वृद्धि धर्म प्रभावना और जन कल्याण का हेतु हुआ।

देश परदेश के प्रौढ पण्डित आप के सत्संग की कामना करते रहते थे। स्व—पर संप्रदाय के साधु भी आपको बडे आदर की निगाह से देखते थे समय आने पर आप भी ऐसे साधु संतों की बीमारी आदि में परिचर्या करने में गौरव का अनुभव करते थे। श्रीआत्मारामजी महाराज की समुदाय के साधु शुभविजयजी एवं श्रीमोहन-लालजी महाराज की समुदाय के साधु प्रताप मुनीजी जब फलोदी में बिमार हो गये थे तब आपने अपना कर्त्तव्य मानकर अद्भुत सेवा का आदर्श उपस्थित किया था।

ऐसे महान सेवा–भावी ज्ञानी-ध्यानी महातपस्वी महात्मा के नित्य दर्शन का लाभ कौन भाग्यशाली नहीं चाहेगा? सभी चाहते हैं। परन्तु काल की कला अकलनीय है। हमारी चाहना अन-चाहना की उसे कोई परवा नहीं है। वह तो अपना कार्यक्रम करता ही जाता है। हमारे परम स्नेह श्रद्धा के भाजनों को हमसे जबरन जुदा कर ही देता है।

हां तो हमारे चरितनायक महातपस्वी जी महाराज के सं० १९६७ और ६६ के चतुर्मास लोहावट के पुण्य क्षेत्र में हुए थे। १९६६ की चौमासी चतुर्दशी का प्रतिक्रमण संघ के साथ बड़ी प्रसन्नता से हो रहा था। उस समय आपको छींक होगई। रात्री के समय विशेष ध्यान में आपको अपने अंत समय का भान हो गया। चतुर्दशी का उपवास तो था ही पूर्णिमा का भी उपवास कर लिया। भावुक भक्त पारणे की प्रार्थना करने लगे पर आप बराबर उपवास करते ही चले गये और अद्भुत आत्म-जागृति के साथ लोगों से फरमाते रहे, भाई! यह शरीर तो भाड़े का घर है। अवश्य छोड़ना पड़ेगा—इससे जो सार निकालना चाहता हूं, निकाल रहा हूं। इस प्रकार उपवासों की परंपरा बढ़ती गई। उस साल में दो श्रावण थे। श्री कल्पसूत्र समाचारी में-सवीसइ राइए मासे विइक्कंते पज्जोसवणा कप्पो-अर्थात् चौमासी चउदश से ५० वें दिन पर्यूषणा-कल्प-संवत्सरी प्रतिक्रमण करना चाहिये ऐसी आज्ञा है पचास के पहिले गुनचासवें दिन भी तिथि टूटने से हो सकता है परन्तु इक्यावनवें दिन में नहीं करना चाहिए ऐसी स्पष्ट सूत्र-आज्ञा होने से दूसरे श्रावण वदी बारस से महा मंगलकारी पर्वाधिराज श्री पर्यूषणापर्व की आराधना हो रही थी। उसके चार दिन पहिले से जो गरम-जल लिया जाता था उसे भी आपने त्याग दिया था।

पर्व की आराधना और महातपस्वीजी की महातपस्या के कारण दूर २ के लोग दर्शनार्थ इकट्ठे हो गये थे। पारणे की प्रार्थना बराबर लोग करते थे। द्वितीय श्रावण शुक्ला चोथ की संवत्सरी का उपवास करके संघ ने बहुत आग्रह किया कि आपको पंचमी का पारणा करना ही होगा। पर श्री महातपस्वीजी ने फरमाया श्री कालकाचार्यजी महाराज ने कारण से चोथ की संवत्सरी की है, सनातन संवत्सरी पंचमी को ही होती थी। अतः पंचमी का उपवास करके छठके दिन आप लोगों की बात सुनुंगा।

लोगों ने देखा एक ही दिन तो है। कल जरूर पारणा करावेंगे। पर भावी विधान कुछ ओर ही था। सं० १९६८ के द्वितीय श्रावण की सुद छठके दिन सूर्योदय का समय था। सारा संघ और मैं मेरे बडे गुरु भाई पूज्य श्री त्रैलोक्यसागरजी महाराज आदि जो कि महातपस्वी जी की सेवा में उपस्थित थे—सबको गुरुदेव ने फरमाया अब हम पारणा करने जाते हैं। आप लोग आत्म कल्याण करें। साधु-साध्वी समुदाय की रक्षा करें। संघ की सेवा करें। आप लोगों का कल्याण हो। बस इतना फरमा कर परमेष्ठी ध्यान में—अर्हं पद के उच्चारण पुरस्सर बडी सावचेती शांति और समाधि के साथ श्री महातपस्वी गुरुदेव ने महा प्रस्थान कर दिया।

२७

: महाप्रस्थान–महोत्सव :

मृत्यु–रसायनेनेह—महात्मानो महीतले ।
महोदयमयं नव्यं—जीवनं प्राप्नुवन्ति वै ॥

मृत्यु रूप रसायन को पाकर महान आत्मायें महोदय मय नव्य जीवन को प्राप्त करती हैं ।

सारा संघ अपने परम आराध्य महातपस्वी गुरुदेव के विरह में शोक विह्वल हो गया। अपने परम संमाननीय गुरुदेव का सम्मान प्रकट करने के लिये संघ ने विमानाकार–रथी तैयार की। दिव्य बाजे बजवाये। विराट जनसमूह के साथ मुख्य २ रास्तों से होते हुए श्री महातपस्वीजी महाराज की गगनघोषी जयनाद के साथ जय जय नंदा, जय जय भद्दा जैसे पवित्र शब्दों का उच्चारण करते हुए लोहावट जाटावास की पूर्व दिशा में दादावाडी के पास सुप्रशस्त भूप्रदेश में चंदन की चिता में आपका दाह संस्कार किया गया।

सिरोही के मोदी जी जो कि उस समय राज के स्थानीय प्रधान पुलीस ओफीसर थे—उनने उस भूखण्ड का वैधानिक अधिकार राज्य की ओर से जैन संघ को दिलवा दिया। जैन संघ ने भी चार दिवारी घेर कर चंपावाडी नाम से उसको आबाद किया।

महातपस्वीजी महाराज के स्वर्गवास की सूचना तार एवं पत्रों द्वारा दूर २ प्रदेशों में गई। कलकत्ते से राय बद्रीदासजी बहादुर ने बडी भक्ति के साथ आपके दाह संस्कार स्थान पर संगमर्मर की छत्री अपनी ओर से भेंट भेजी। चंपावाडी में छत्री चरण आज भी भाविक भक्तों द्वारा पूजे जाते हैं।

श्री महातपस्वीजी गुरुदेव के स्वर्गवास समारोह के उपलक्ष्य में स्थानीय संघ ने बडे ठाठ के साथ अष्टाह्निक महोत्सव किया। प्रेरणा करके लोहावट की पश्चिमोत्तर दिशा में गोचर भूमि सरकार से खुली छुडवा दी।

श्री महातपस्वीजी महाराज स्थूल शरीर से आज हमारे सामने नहीं हैं, फिर भी सूक्ष्मरूप से आज भी अपने अमर आदर्शों के द्वारा उपस्थित हैं। भाविक भक्त लोग हर सुदी छठ को और पर्यूषण के बाद की सुद छठ की वार्षिक तिथि को त्याग-तपस्या-पूजा रात्री-जागरण करके जयपुर जोधपुर बीकानेर फलोदी लोहावट आदि २ स्थानों में आज भी ऊजवते हैं।

प्रति वर्ष दर्शन के निमित्त बाहर के भक्त लोग अपनी २ भावना के पूर्ण होने से लोहावट में आते हैं। जीवित अवस्था में आप चमत्कारी थे ही पर आज भी आपके चमत्कार भक्तों की भक्ति के अनन्य कारण बन रहे हैं। संकट के समय— महातपस्वी श्री छगनसागरजी

महराज का ध्यान आज भी सहायता प्रदान करता है। सुख, सौभाग्य, आरोग्य, जन-धन वृद्धि आदि आपके नाम मंत्र के जाप से स्वयं सिद्ध हो जाते हैं। कठिन से कठिन काम करने से पहिले श्री महातपस्वीजी का स्मरण कर लेने से वह आसान बन जाता है।

उनकी दिव्य ज्योति आज भी भक्तों को दिखाई देती है। लोहावट का वह स्थान-चेणावाडो रेल्वे पुल के ठीक सामने महान चमत्कारों को लिये हुए मौजूद है।

❀ उपसंहार ❀

भगवान श्री महावीर स्वामी के गणधर श्री सुधर्मा-स्वामी की खरतर सुविहित परंपरा में सडसठवें पटधर श्री जिन भक्ति सूरिजी महाराज हुए। उनकी परम—संवेगी शिष्य परंपरा में क्रमशः श्री प्रीतिसागरजी गणि, वाचना चार्य श्री अमृतधर्मजी, उपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजी महाराज, श्री धर्मानन्दजी गणी उपाध्याय श्री राजसागरजी महाराज हुए। आपके दूसरे शिष्य श्री स्थानसागरजी महाराज-जो कि हमारे चरितनायक महातपस्वीजी के गुरुदेव थे-भगवान श्री महावीर देव की परंपरा में तिहत्तरवें नम्बर में आते हैं। इस प्रकार महातपस्वीजी श्रीमान् छगन सागरजी महाराज का नम्बर चौहोत्तर वां होता है।

चरित नायक श्री महा तपस्वीजी महाराज ने वि० सं० १८९६ की चैत शुक्ला १३ को फलोदी में जन्म लेकर

आदर्श गृहस्थाश्रम को निभाते हुए पुत्रादि परिवार को छोड अपनी सती स्त्री के साथ वि० सं० १९४२ की वैसाख शुक्ला १० मी को पुज्येश्वर गणाधीश्वर श्रीमान सुख सागर जी महाराज साहब के वरद कर कमलों से दीक्षा ग्रहण की। गृहस्थावस्था के छोगमल जी गोलेछा साधु होने पर हमारे चरितनायक महातपस्वी श्री छगन-सागरजी महाराज हुए। वि० सं० १९६६ के द्वितीय श्रावण मास की सुद छठ के दिन आप स्वर्गवासी हुए।

परम गुरुदेव गणाधीश्वर श्रीमान भगवानसागरजी महाराज साहब के महान सदनुग्रह से, और अपनी अलौकिक साधना के बलसे महातपस्वीजी का जीवन अनुपम आदर्श घटनाओं का एक इतिहास बन गया। इसका संकलन कई वर्ष पूर्व में किया हुआ पडा था परंतु संयोग वशात् प्रकाशन अभी हो रहा है। इस छोटी सी पुस्तिका में संक्षिप्त रूप से अंकित श्री महातपस्वी जी की महान जीवन ज्योति हमारी जीवन ज्योति को अनुप्राणित करने वाली हो इस शुभ संकल्प के साथ श्री महातपस्वी जी को कोटिशः वन्दन करता हुआ, प्रार्थना करता हूं कि—

शिवमस्तु सर्व जगतः—परहित—निरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाःप्रयान्तु नाशं—सर्वत्र सुखीभवतु लोकः ॥ १ ॥

बोलो—महा तपस्वी सद्गुरुदेव की जय

[पूज्येश्वर महातपस्वीजी महाराज की काव्य रचना अपूर्व थी। परिशिष्ट नं० १ और २ में मुद्रित श्रीसिद्धाचल स्तुत्यष्टक एवं श्रीदर्शन-द्वात्रिंशिका हमारे भण्डार में उपलब्ध है। जो यहां दिये जाते हैं। पाठक रसास्वाद लें।]

[परिशिष्ट नं० १]

❁ श्रीसिद्धाचल-तीर्थराज-दर्शन ❁

—स्तुत्यष्टक—

(*वसंत तिलका*)

१

श्री सुहृदुपास्य ! जय पावन तीर्थराज !
हेलघ्वघौघहर ! हे भव-सिन्धु-पाज !
शंस्त्रात्मसिद्धिविधि कारण—पुण्यरूप !
मोहारि-मर्दन—सहायक-भव्यभूप !

२

आदीश-पूज्य-पद-पूत ! विधूत-पाप !
दूरीकृत-प्रणत-कर्म-विपाक—ताप !
एकान्त-कान्त-सदनन्त-पदाप्त-मूर्त !
स्फूर्ति-प्रधान ! जय जीवनदान-कीर्त !

३

सिद्धाचलोत्तम—महत्तम-भाव-पूर्ण !
प्रत्यक्षतः प्रकृत-दुःख—समूह-चूर्ण !

संसार-सार ! जय मोक्षविकार ! लोक-
शोकापनोदन—महोदय-सद्गुणौक: !

४

अध्यात्म-दर्शन—विमर्श-प्रकर्षहेतो !
चेतो विलासि-गुणमन्दिर-तुङ्ग-केतो !
आनन्द-कन्द-कलितोज्ज्वल कीर्तिधाम-
तीर्थाधिराज ! जय साधु-कलाभिराम !

५

शत्रुञ्जय ! प्रवर—संवर—सार—सूत !
भूतेषु भूति—भरणोद्धुर—मुक्तिदूत !
स्फूर्जत्सुरासुर—समर्चित—सर्वदेश !
तीर्थेश पूज्य ! जय सुन्दर-सर्व-वेश !

६

योगाङ्ग-साङ्गम-विराजित-सर्वभाव—
योगीश्वरै रपि समाश्रित सत्प्रभाव !
निश्रेयसं प्रविदधत्सु शमिह प्रसिद्ध—
सिद्धाचलेह जय सद्गुरुभा—समृद्ध !

७

हंहो स्वयं गिरिरयं सरजा रजांसि
भव्यात्मनां हरति संदधतां तपांसि ।
एवं सुगीत—विमलाचल नामधेय—
स्त्वं भो जय प्रणय-पूर्वक-भक्ति जेय !

८

सिंहोद्धता बहुवेलाः सुमुनि-प्रवीरा—
ध्येयैक-लीन-मनसः सततं सुधीराः।
त्वां तीर्थराजमुपगम्य विवृद्ध—कर्म—
शत्रूञ्जयन्ति जय हे कृत-सर्वशर्म॥

९

इत्थं श्रीविमलाचलोत्तममहा-तीर्थाधिराजो भवान्
दृष्टास्वीय-विवेक-नेत्रविधिना स्पृष्टः स्वयोगे मया।
पूज्य-श्री-भगवद्गुरोः करुणयाऽमा भक्त-संघेन वै,
धन्योऽहं छगनाम्बुधि स्त्रिभुवने जातो स्म्यहो साम्प्रतम्

[परिशिष्ट नं० २]

◎ श्री दर्शन—द्वात्रिंशिका ◎

१

स्वरूपतोऽपि पर—रूपतोऽपि,
विरोधि-धर्मा अविरोधभावाः।
वस्तु-स्थिता येन प्रकाश-भावे,
गतास्तदेवेह महः प्रणौमि॥

२

उत्पाद-नाश-स्थिति पूर्वकं सद्—
वस्त्वस्ति चिम्वेऽत्र जडाजडं यत्

अस्तीति मन्ता स हि चास्तिकः स्यात्
तदास्तिकत्वं स्वपदाश्रितं हि ॥

३

अपि स्वतन्त्रो बहुकर्म-कर्ता-,
स्वात्मैव कालादि-निमित्त-योगी ।
स एव तत्कर्म — फलोपभोक्ता
भोगाभिमानेन भवं स गन्ता ॥

४

पृथ्व्यम्बु-वाय्वग्नि-वनस्पतीनां
तथैव कीटादिक-जातिजानाम् ।
शरीरमात्मैव समाश्रितोऽयं,
चैतन्य-धर्माधिगतो ह्यनादिः ॥

५

स्व—पुण्य—योगेन नरत्वमाप्य,
गुरूपदेशेन—निसर्गतो वा ।
श्रद्धान—संविच्चरणाभिरामो ,
ऽकर्मेश्वरो नन्त-शिवं स गन्ता ॥

६

आत्मातिरिक्तानि भवन्ति पञ्च-
द्रव्याण्यनादीनि जडत्ववन्ति ।
* पर्यायेयुक्त्व-स्व-गुणाश्रयाणि,
ज्ञेय—प्रमेयत्व प्रकाशवन्ति ॥

---

* आत्मद्रव्यमपि गुण-पर्यायवद् ज्ञेयत्वप्रमेयत्व-प्रकाशवच्च, योग-विभागाद् बोध्यम् ।

७

धर्मास्तिकायश्चलन—स्वभावो,
ऽधर्मास्तिकायः स्थिति-धर्म एव।
दत्ते ऽवकाशं गगनास्तिकायः
जीवस्य वै पुद्गलकस्य लोके॥

८

प्रवर्तना-लक्षणकोऽस्ति काल—
इमे समेऽरूपिण एव बोध्याः।
वर्णैश्च गन्धैश्च रसैश्च शून्या
अलोकके केवल मस्ति खं वै॥

९

वर्णादिवान्सन्क्षय—पूरणात्मा
रूप्यस्तिकायः खलु पुद्गलाख्यः।
शब्दान्धकारादिककार्यमस्य
विज्ञानभाजा मिह सुप्रसिद्धम्॥

१०

द्रव्यात्मकं नैक—विचार—पूर्णं,
जगत्सतांज्ञेय मतः परं तत्।
हेयं तथैव स्वहितं हि किञ्चो-
पादेय मित्थं सुविचारणीयम्॥

११

मिथ्यात्व-भावेन तथा व्रतेन
कषाय-योगादिक—कारणैश्च।

अनादि-सन्तान-परम्परात—
आत्मेह बद्धास्स्वकृत-क्रियाभिः ॥

१२

क्रियैव कर्मेति वदन्ति केचित्,
परंतु तत्पुद्गल—बन्धरूपम् ।
विज्ञाय तन्मोक्षविधौ विधेयो
भव्यात्मभिः सत्पुरुषार्थ एव ॥

१३

आत्मैक्य मस्तीह स्वरूप-मात्रं
सङ्ख्यापरत्वे तदनन्त-सङ्ख्यम् ।
प्रमाणमत्र स्वपराव-भासि—
ज्ञानं गुणो वर्त्तत आत्मनस्तत् ॥

१४

सामान्यतश्चापि विशेषतो वा
स्वरूपमेवास्ति विचारणीयम् ।
विचार शुद्धौ भवतीह सम्यक्-
श्रद्धान-सम्यक्त्व-विशिष्ट-भावः ॥

१५

सम्यक्त्व-पूर्वं व्रतधारणं च,
तद्देशतो वाऽथच सर्वतोऽपि ।
देशव्रतं श्रावक-धर्मरूपं,
सर्वव्रतं साधुजनैश्च सेव्यम् ॥

१६

मोक्षानुयोगाचरणं हि योगः
भवेत्स सम्यग् व्रतिनां जनानाम् ।
भोगाभिमान-त्यजनेन लोके—
व्रतं भवत्येव समाधि-हेतुः ॥

१७

तद्देशतो द्वादश—भेद भिन्नं,
सुवर्णितं वै गृहिणां तथैव ।
पञ्च-प्रकारं खलु सर्वतोऽपि,
प्राणातिपातादि-निवृत्ति-धर्मम् ॥

१८

धर्म—प्रभावादिह कर्मनाशः
स्वकर्मनाशात्परमात्मरूपम् ।
तद्युक्त आत्मा भगवान् स चार्हन्
यः केवल-ज्ञान-विशिष्टदेहः ॥

१९

विदेह—भावेन स सिद्ध एव
देवस्वरूपेण विशेष—पूज्यः ।
सर्वोदय—स्वस्ति—विधानमूलं
तच्छासनं सर्वहितं हि मान्यम् ॥

२०

आचार्यवर्या अपि पाठकेशा-
ये साधवः संयम-सावधानाः ।

गृणन्ति तत्त्वं गुरवस्त एव
सेव्याःसुमान्याः स्वहितैक-निष्ठैः ॥

२१

समान-भावेन नराश्च नार्यः,
शिवाधिकारित्वमहो लभन्ते ।
तेषां हि सङ्घः प्रभवेच्चतुर्धा,
तीर्थं तमेव प्रवदन्ति सन्तः ॥

२२

तीर्थं हि संप्राप्य तरन्ति लोकाः
स्वभाव-शुद्ध्या बहुभिःप्रयोगैः ।
प्रयोग—सेवा—समये विवादो
हितैषिभिर्नैव कदापि कार्यः ॥

२३

वादे सुवादे भवतीह बोधो
बोधेन शुद्धि-र्निज जीवनस्य ।
वादो विधेयो न हि वै विवादो
विवादतः केवल-कण्ठशोषः ॥

२४

अध्यात्म-साम्येन च वर्त्तनीयं
स साम्यवादः समये प्रसिद्धः
सर्वेषु भूतेषु यदात्मवत्तत्
सदाप्त-वाक्यं हृदये निधेयम् ॥

२५

न जातिमात्रेण जनोऽत्र नीचः
स्यात्कर्मभिः प्रत्युत नीच उच्चः।
तस्मात्स्व-कर्माणि विलोक्य लोकाः
कुर्वन्तु शुद्धान्यथ सत्प्रयत्नाः ॥

२६

उच्चत्व-मानं निज--नीचताया
हेतुं त्यजन्तामयि ! दूरतस्तत् ।
श्रीचित्त-संभूति-मुनीश्वराणां
चरित्रमेवेह पठन्तु पुण्यम् ॥

२७

सच्छास्त्र-पाठेन विवेक-शुद्धि—
र्विवेकशुद्ध्या स्वक-बुद्धि-शुद्धिः।
स्वबुद्धि-शुद्ध्या परमात्मलाभः
परात्मलाभान्न परो हि लाभः ॥

२८

जीवोऽप्यजीवोऽथ सुपुण्य-पापे,
कर्माश्रवः संवर—निर्जरे च ।
बन्धश्च मोक्षो गुरुपाद-मूले,
तत्त्वान्यमूनीति विचारयन्ताम् ॥

२९

विचार आचार-विशुद्धि-हेतु—
राचार-शुद्धाविह भाव-शुद्धिः।

स्वभाव-शुद्धौ सुखसागराभं—
स्थानं शिवं लब्स्यति ध्रुवं वै ॥

३०

सुदेव-गुर्वोः समुपासनाभिः
स्वात्मास्थितं तत्पदमेव तूर्णम् ।
सम्पादनीयं परमं—प्रयत्नै—
र्दीपान्तरं दीपकतो यथेह ॥

३१

कश्चिन्न कर्त्ता सुख-दुःखयो मे,
ममैव कर्माणि तदेक-हेतुः ।
कर्म—क्षयार्थं सुतपो विधेय—
मितीह चिन्त्यं निजदर्शनं वै ॥

३२

इत्थं श्रीभगवद्गुरोः करुणया स्वात्मैक-बोधोद्धुरा
स्फूर्जद्भावमयी महोदयपदा द्वात्रिंशिका दर्शने ।
संहब्धा छगनाब्धि-नाममुनिना सन्तु प्रसन्ना यके
सन्तः सत्यविचारणैक-चतुराः पाठप्रचारोद्यताः ॥

